खंड 5
उभरते विषय और प्रवृत्तियाँ

खंड 5 उभरते विषय और प्रवृतियाँ

खंड परिचय

यह खण्ड संरचनात्मक सुधार, संसाधन गतिशीलता और आधारभूत योजना से सम्बन्धित उभरते विषयों के बारे में बताता है। यह विभिन्न आर्थिक और सामाजिक विषयों जैसे आधारभूत कार्यकर्त्ताओं की क्षमता निर्माण में शिक्षा और प्रशिक्षण की भूमिका की चर्चा करने के साथ-साथ व्यक्ति अभिकेन्द्रित विकास, वातावरण और महिला सशक्तिकरण पर अधिक ध्यान देगा।

इकाई 18 : विकास योजना : प्रकृति और क्षेत्र

विकास नीति में समाजवादी दृष्टिकोण से नव उदारवादी सिद्धान्त की तरफ उल्लेखनीय परिवर्तन है। इस संदर्भ में हम इस इकाई में विकास योजना का अभिप्राय और इसके पीछे तर्क की चर्चा करेंगे। हम भारत में वर्तमान विकास स्वरूप तथा ग्रामीण विकास और स्थानीय शासन के लिए उसके प्रभाव की भी विशेष चर्चा करेंगे।

इकाई 19 : लघु स्तरीय योजनाएँ : निर्माण और कार्यान्वयन

आजकल विकास योजना में जोर ऊपर से नीचे की तरफ से नीचे से ऊपर की तरफ हस्तांतरित हो गया है। इस इकाई में हम लघु स्तर की योजना का महत्त्व और विषयों की चर्चा करेंगे तथा इसकी बाधाओं पर भी प्रकाश डाला जाएगा। हम दसवीं योजना की प्राथमिकताओं की भी चर्चा करेंगे।

इकाई 20 : संरचनात्मक सुधार : संसाधन, वित्त, शक्तियाँ और कार्य

इस इकाई में हम योजना और लोगों की भागीदारी प्रणालियों के लिए मूलभूत सुविधाओं की पहचान के लिए स्थानीय संस्थाओं की संरचना, अधिकार और कार्यों की चर्चा करेंगे। हम स्थानीय संस्थाओं के संसाधनों की भी चर्चा करेंगे और भविष्य के कार्यों की व्याख्या करेंगे।

इकाई 21 : जमीनी स्तर के कर्मियों का क्षमता-निर्माण

इस इकाई में हम स्थानीय स्तर पर क्षमता निर्माण के महत्त्व की चर्चा करेंगे। हम स्थानीय स्व-शासन में शामिल सभी कारकों जैसे नौकरशाही, नागरिक समाज और राजनीतिज्ञों में क्षमता निर्माण की आवश्यकताओं की भी चर्चा करेंगे। इस संदर्भ में हम ई-शासन के महत्त्व की भी चर्चा करेंगे।

इकाई 22 : सतत् विकास और विकेन्द्रीकृत शासन की चुनौतियाँ

स्थानीय शासन के माध्यम से सतत् विकास किया जा सकता है। इस इकाई में हम छात्रों को सतत् विकास के अभिप्राय से अवगत कराएँगे। हम सतत् विकास और शासन के बीच परस्पर सम्बन्धों की पहचान करेंगे। हम सतत् विकास में राज्य और स्थानीय संस्थाओं के दायित्वों की भी चर्चा करेंगे तथा कार्यान्वयन नीतियों का भी वर्णन करेंगे।

इकाई 23 : विकेन्द्रीकरण : संभावनाएँ

इस पाठ्यक्रम की यह अंतिम इकाई है जो विकेन्द्रित शासन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पक्षों का वर्णन करती है। यह छात्रों को स्थानीय संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के लिए किए गए विभिन्न सुधारों से अवगत कराती है। यह विषयों और स्थानीय शासन के बारे में लोगों की इच्छाओं की भी पहचान कराती है।

MPA-016 (H) Book-1

इकाई 18 विकास योजना : प्रकृति और क्षेत्र

रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 विकास योजना का मूलाधार

18.3 बहुस्तरीय योजना

18.4 विकास योजना का संदर्भ

18.5 योजना निर्माण में आवश्यकताएँ

18.6 सारांश

18.7 मुख्य अवधारणाएँ

18.8 संदर्भ व अन्य लेख

18.9 अभ्यास

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- विकास योजना (development planning) के अभिप्राय के बारे में समझ सकेंगे;
- विकास योजना के मूलाधार (rationale) का वर्णन कर सकेंगे; और
- भारत में वर्तमान विकास स्वरूप (current development paradigm) को तथा ग्रामीण विकास और पंचायत शासन के लिए इसके तात्पर्य को उजागर कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

वर्तमान में विकास नीति में सामाजिक से नव उदारवादी विचारधारा की तरफ उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है। सोवियत संघ के बिखरने से विकास के *समाजवादी स्वरूप* को *उदार मुक्त* (Free Market) बाज़ार विस्तार के पक्ष में हार मानने का ज़िम्मेदार माना जाता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि आर्थिक तर्कसंगत होने के अलावा पूँजीवादी विश्व के नियमों को राजनीतिक तार्किकता/वैधता (rationality/legitimacy) प्राप्त हुई है क्योंकि विवाद के बावजूद पश्चिम ने यह शीत युद्ध स्पष्ट रूपसे जीत लिया। इस प्रकार विकास अर्थ व्यवस्था का प्रच्छन्न राजनीतिक प्रभाव पड़ता है और विकास अर्थव्यवस्था स्वरूप में हाल ही के परिवर्तन को पूरी तरह समझने के लिए इस पर ध्यान देना आवश्यक है। विकासशील देशों में सार्वजनिक नीति पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) के सुझावों का काफी दबाव रहता है। विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation; WTO) ने व्यापार और प्रशुल्क पर सामान्य समझौते – गैट (General Agreement on Trade and Traiff; GATT) का पालन करते हुए विकासशील देशों जैसे भारत में सार्वजनिक नीति निर्माण के लिए दबावों का नया वातावरण उत्पन्न कर दिया। परिवर्तन के पीछे आर्थिक तार्किकता तीसरी दुनिया में गरीबी घटाने के पूर्व स्वरूपों की असफलता है तथा तीसरी दुनिया

में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाधाओं को समाप्त कर अर्थव्यवस्थाओं के मुक्त होने की आशा है। जिससे व्यापार अवसरों में वृद्धि होगी जिससे नौकरियों की उत्पत्ति होगी और इस प्रकार धन में वृद्धि होगी।

इस इकाई में हम भारत में जिला स्तर पर ग्राम विकास के लिए विकास योजना के भविष्य के संदर्भ में इन विकासों के अभिप्रायों को समझने का प्रयास करेंगे। इस संदर्भ में 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों का पालन करते हुए इसकी आवश्यकताओं और विद्यमान/वांछित संस्थात्मक प्रबंधों को भी समझने का प्रयास किया जाएगा। विषय वस्तु विशेषज्ञों द्वारा बार-बार माँग करने के बावजूद मुख्यतः व्यवस्थात्मक बाधाओं जैसे राज्य स्तर पर अपर्याप्त योजना प्रयास, स्थानीय स्तरों पर अपर्याप्त अनुवर्ती/तर्कसंगत हस्तांतरण, योजना के लिए स्थानीय स्तर पर विशेषज्ञता का अभाव तथा कमज़ोर प्रशासन आदि ऐसी अनेक बाधाओं के कारण जिला योजना पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया था। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों में वांछित क्षेत्र आधारित स्थानिक योजना के लिए जिला योजना समिति के गठन के लिए तथा राज्य और पंचायत संस्थाओं के बीच संसाधनों के वितरण को शासित करने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया था।

इस इकाई में हम विकास योजना के नव-उदार विकास स्वरूप के संदर्भ में इन अभिकरणों के अपेक्षित/निर्वाह की जा सकने वाली भूमिका को देखेंगे। भारत निर्देशात्मक योजना के मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले स्वरूप से अपेक्षाकृत मुक्त अर्थव्यवस्था की तरफ संक्रमण की अवस्था से गुजर रहा है। नए विस्तार और संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के संदर्भ में इसकी आवश्यकताओं के बारे में विकास योजना के भविष्य पर ध्यान केन्द्रित रहेगा। संघर्षों और विरोधों और साथ-ही-साथ कार्यों की नई अवस्था के गुणों का भी अध्ययन किया जाएगा।

18.2 विकास योजना का मूलाधार

यह सुझाव देना अस्वाभाविक नहीं है कि विकास योजना अपनी आर्थिक तार्किकता/मूलाधार अर्थशास्त्र के *लोक वित्त* (Public Finance) शाखा से ग्रहण करती है जो आमदनी और रोज़गार के जे. एम. केन्स के सिद्धान्त पर आधारित है। लोक वित्त का अभिप्राय है अधिक सरकारी जो उदारवादियों और अब जन विकल्प (Public Choice) सिद्धान्तवादियों के अधिमान्य कम सरकारी सिद्धान्त के विपरीत है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि अधिक सरकारी सिद्धान्त के अनुसार मुक्त छोड़े गए बाज़ार के दोषों को ठीक करने के लिए सरकार को हितकारी तरीके से हस्तक्षेप करना पड़ता है क्योंकि बाज़ार प्रणाली अलाभकारी जन कार्यों और निर्धन वर्ग के लिए सामाजिक योजनाओं के पक्ष में संसाधन आबंटन को अधिक सुविधाजनक नहीं बनाती है जोकि विकास के लिए आवश्यक है। इस प्रकार सरकार को रोज़गार उत्पन्न करने वाली गतिविधियों/परियोजनाओं में सार्वजनिक व्यय के द्वारा विकास में सक्रिय भाग लेना पड़ता है ताकि आमदनी का स्तर बढ़ाया जा सके जिससे अर्थव्यवस्था में माँग में वृद्धि (सकल माँग) होती है जिससे समग्र प्रगति के लिए उत्पादन अर्थव्यवस्था में (सकल पूर्ति) वृद्धि होती है। राज्य को नए संसाधन उत्पन्न करने वाले उपायों जैसे निर्धनों के पक्ष में भिन्न कराधान और पुनर्वितरण कार्यसूची के साथ बजट में संसाधन आबंटन के द्वारा निर्धनता और असमानता से संघर्ष करना पड़ता है। अतः जनता के लिए आमदनी और रोज़गार के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बनाई गई योजनाओं के आधार पर सार्वजनिक व्यय किया जाना चाहिए और योजना के अनुसार लक्ष्य निर्धारण करने के लिए उसी के अनुरूप संसाधन आबंटित किए जाने चाहिए।

जिस खर्च की बात हो रही है वह पूँजीगत खर्च है जो मुख्यतः बाहरी और आंतरिक ऋणों के माध्यम से पूरा होता है। पिछले कुछ दशकों में ग़ैर-योजना खर्च योजना और ग़ैर-योजना पूँजीगत खर्च के बदले काफी बढ़ गया है। सामान्य शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि दैनिक खर्च जैसे स्थापना व्यय, सेवा उपकरणों, वेतन अदायगी तथा अन्य व्यय पर किया जाने वाला खर्च इतना अधिक बढ़ गया कि राज्य सरकारों को वह पूँजीगत खर्च घटाने के लिए विवश होना पड़ा जो मुख्यतः विकास खर्च होता

है और योजना कार्यों पर खर्च किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप अनिवार्य विकास कार्य जैसे आधारभूत सुविधाएँ बनाना और उद्योगों की स्थापना करना आदि कार्य राज्य में नहीं हुए। इसलिए विकास योजना में कार्मिक बजट में कटौती करने के द्वारा रखरखाव खर्च कम करने का दबाव है जिसका अर्थ है सरकारी क्षेत्र में व्यापक रोज़गार स्तर में कमी करना। इस प्रकार दसवीं योजना में ऐसे विशेष क्षेत्रों में जहाँ राज्य का निष्पादन अपेक्षाकृत अकुशल रहा है और नागरिक समाज अपेक्षाकृत सुव्यवस्थित है वहाँ से राज्य के हटने का प्रावधान किया गया है। आमदनी और रोज़गार के वर्तमान स्तरों को बढ़ाने के लिए रोज़गार उत्पन्न करने वाली योजनाओं जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में लोक निर्माण कार्यों पर खर्च किया जाएगा।

18.3 बहुस्तरीय योजना

1960 के दशक तक विकास योजना के क्षेत्रों में निवेश आबंटनों के माध्यम से संसाधन विकास पर ज़ोर दिया जाता था। आशा की जाती थी कि अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों के द्वारा प्रगति वृद्धि की जाएगी। इससे समाज के निम्न वर्गों में भी लाभ पहुँचने की आशा थी। फिर भी, व्यापक समग्र संदर्भों में ऐसी योजना को बाद में क्रमशः निम्न स्तरों पर क्रियात्मक रूप प्रदान करने की आवश्यकता है चूँकि केन्द्रीय संपूर्ण योजना औसतों के रूप में तैयार की जाती है अतः क्षेत्रों के लिए विशिष्ट लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने की विशिष्ट पद्धतियों के लिए इन औसतों को क्रमिक अवस्थाओं में विभाजित करने की आवश्यकता है। स्थानीय स्तर पर विकास योजना में लक्ष्यों को स्पष्ट करने और विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति बनाए रखने तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए योजनाओं को अपेक्षित विस्तार के साथ लागू करने के लिए रूपरेखा बनाने की आवश्यकता है। सही कार्यान्वयन न होने से संसाधन बर्बाद/नष्ट हो जाता है जिससे एक सही नीति भी निष्प्रभावी हो जाती है। यह कृषि जैसे अत्यधिक अनिश्चित क्षेत्रों में विशेष रूप से लागू होता है जहाँ कृषि वातावरण और पारिस्थितिकी क्षेत्रों/स्थितियों में स्थानीय भिन्नताएँ और भी गहन हो जाती है। बहुस्तरीय योजना में विकास योजनाकारों द्वारा स्थानीय स्तर पर व्यापक ध्यान देने के माध्यम से योजनाओं में विभिन्न सरोकारों के कारकों को सहज बनाने की आशा की जाती है। योजनाकार संसाधन का अधिक दक्ष उपयोग एवं सतत् विकास परम्पराओं के द्वारा भी अधिक उत्पादकता सुनिश्चित करते हैं क्योंकि नीति के बाहरी/अवांछित प्रभावों को इससे अच्छी तरह समझा जाता है।

योजना कार्यान्वयन के संदर्भ में छोटे स्तरों पर वृहत लक्ष्यों के विस्तृत और विशेष विवरण उपलब्ध करने होते हैं। फिर भी योजना शीर्ष पर संकेन्द्रित रहती है। इसका अभिप्राय यह है कि निर्णय-निर्माण में किन्हीं विशेष क्षेत्रों की आवश्यकताएँ व प्राथमिकताएँ स्पष्ट करने और प्रगति क्षमताओं की पहचान करने में स्थानीय सहभागियों को शामिल नहीं किया जाता था। चूँकि नीतियों में संसाधनों और क्षमताओं के संदर्भ में स्थानीय आवश्यकताओं और संभावनाओं का तार्किक सम्बन्ध नहीं था अतः वृहत योजना में निर्धारित लक्ष्यों और क्षेत्र के संसाधनों व क्षमता के बीच प्रायः असंतुलन रहता था जिससे अलग-अलग क्षेत्रों में नीतियों में प्रायः संशोधन/परिवर्तन करना पड़ता था।

यह प्रस्ताव इस सिद्धान्त पर आधारित है कि स्थानीय स्तर पर लिए गए निर्णय अधिक सार्थक/प्रमाणिक होते हैं क्योंकि यह सुस्पष्ट आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं जो उन दूरस्थ अवलोकनों/अनुमानों पर आधारित नहीं होते जो वृहत नीति योजना की बुनियादी बाधा है। यह दसवीं योजना के दस्तावेज में वर्णित है। इसके अनुसार, अब स्थानीय स्तर पर योजना के मार्गदर्शन को स्पष्ट करने तथा इसके लिए विशेषज्ञता बनाने की प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। अब शीर्ष से निम्न विचारधारा के विकल्प के रूप में बहु-स्तरीय योजना पर विचार किया जा रहा है जिसमें योजना प्रक्रिया में सभी स्थानीय स्तरों पर निर्णय निर्माणकर्त्ताओं को शामिल किया जाता है। यह भागीदारी सूचना विनिमय और संदर्भों के परस्पर भागीदारी के माध्यम से संप्रेषित कर चर्चाओं, विचार विमर्शों और परामर्श के द्वारा

की जाती है। इससे नीतियाँ सार्थक और आवश्यकता आधारित बन जाती है तथा प्रत्येक वांछित अवस्था पर ऐसे सहयोग को प्रभावित करने के लिए प्रक्रिया सम्बन्धी व्यवस्थाएँ/परम्पराएँ स्थापित हो जाती हैं। योजना विकेन्द्रीकरण के स्वाभाविक सिद्धान्त के रूप में लोगों की भागीदारी व्यवस्थाओं को अधिक सार्थक नीति के लिए प्रत्येक स्तर पर गहनता से तलाश करने की आवश्यकता है क्योंकि लक्ष्य लाभार्जक लोगों की सक्रिय भागीदारी के अभाव में हितों को पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इससे नीति प्रस्तावों में प्रयासों को स्थानीय स्तरों पर स्पष्ट किया जा सकता है।

बहुस्तरीय योजना से सम्बन्धित क्षेत्रों और विद्यमान प्रक्रिया के बीच अपेक्षित सूचना के लिए उपयुक्त संपर्क बनाकर प्रभावी संचालन बनाने की भी आशा की जाती है। इससे अनेक कार्यान्वयन सम्बन्धी बाधाएँ जैसे विलंबित निर्णय के कारण होने वाली बाधाएँ हट जाएगी।

बहुस्तरीय योजना से क्षेत्रीय विसंगतियाँ कम होने तथा विकास में अधिक समानता लाने की आशा की जाती है क्योंकि स्थाई क्षेत्रीय असंतुलन का मुख्य कारण ज्ञात कर लिया गया है जोकि निम्न स्तरों पर किसी विशेष क्षेत्र/लक्ष्य समूह की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्थानीय विकास योजनाकारों द्वारा आवश्यक संशोधन/विवरण के बिना वृहत् योजना का अध्ययन रहित कार्यान्वयन है।

भ्रष्टाचार एक अन्य स्थायी समस्या है। उदाहरण के लिए, मुख्य समस्या थीं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में लाभार्थियों की पहचान और उनकी स्पष्ट आवश्यकताएँ जो व्यवस्था से काफी भिन्न थीं। गलतियों/तथाकथित आचरण/असावधानी ने प्रयासों को काफी हद तक व्यर्थ कर दिया। स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से समस्या का समाधान किया जा सकता है।

विकास योजना से मिश्रित भूमिका को स्पष्ट करने, क्षेत्रों में परस्पर व्याप्ति को हटाने और निर्धारित परिणाम स्तरों के लिए सम्बन्धित आवश्यकताएँ स्थापित करने के द्वारा कार्यान्वयन प्रक्रिया को सरल करने की आशा की जाती है। स्थानीय विकास योजनाकार प्रादेशिक स्तर अर्थात् ग्राम सभा; समिति और जिला परिषद स्तर पर निर्णय कर सकते हैं जहाँ पर कार्य अधिकतम प्रभावी और किफायती स्तर पर निष्पादित किया जा सकता है। नीति को सभी शाखाओं के संदर्भ में व्यापक होने की आवश्यकता है। अपेक्षित समन्वय के लिए पारस्परिक व्यवस्थाएँ स्थापित करनी होंगी ताकि पिछड़े और अग्रणी संपर्क सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक अवस्था में सूचना का मिलान करना होगा ताकि प्राप्त प्रगति, अंतर क्षेत्रीय प्रभावों (बाहरी प्रभाव) श्रेष्ठ निष्पादन की अपेक्षाओं तथा समग्र विकास के लिए आवश्यक क्षैतिज (अर्थात् क्षेत्र से क्षेत्र का संपर्क) तथा ऊर्ध्व (अर्थात् क्षेत्रीय क्रम) संपर्क/सम्बन्ध सुनिश्चित किया जा सके। इस सम्बन्ध में प्रयास को नष्ट कर सकने वाले अत्यधिक दीर्घ क्रम परंपरा या असीमित परामर्श प्रक्रियाओं के द्वारा संगठनात्मक जटिलता से बचने के लिए ध्यान रखना होगा। इसलिए प्रक्रियात्मक बाधाओं को समाप्त करने की आवश्यकता होगी।

18.4 विकास योजना का संदर्भ

भारत में विकेन्द्रीकरण की सजग प्रयास के रूप में आलोचना की जा सकती है। क्योंकि आवश्यक सामाजिक-आर्थिक अपेक्षाएँ जैसे जागरूकता, शिक्षा के वांछित स्तर, योजना में लोगों की भागीदारी के लिए संस्थागत प्रबंध, लोगों की भागीदारी के साथ योजना कार्यान्वयन, वांछित तकनीकी ज्ञान प्रदान करना तथा सामाजिक और आर्थिक सुधार के द्वारा संस्थागत सुधार आदि सुनिश्चित किए बिना योजना आरंभ कर दी गई। इसका विपरीत उत्तर यह हो सकता है कि कोई भी व्यक्ति चिरकाल तक उपयुक्त समय की प्रतीक्षा नहीं कर सकता। अतः वर्तमान प्रयास संस्थानीकरण सिद्धान्त के सैद्धान्तिक अनुमान के साथ किया गया है। इसके द्वारा "एक सामाजिक भूदृश्य" में संस्थाओं की स्थापना के द्वारा वांछित परिवर्तन प्राप्त किए जाते हैं जो एक अवधि में परिवर्तन अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करती है। जैसे ही

इनमें समन्वय होता है ये एक "आधार" पर कार्य करती है तथा अपनी प्रकृति/स्थिति के अनुसार अपने स्वरूप में परिवर्तन कर लेती है। स्व-शासन संस्थाओं की स्थापना से उपरोक्त भावी सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया आरंभ होने की आशा की जाती है। क्योंकि सशक्तिकरण, आत्म निर्भरता और आधारभूत लोकतंत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लोगों में श्रेष्ठ सजगता के संदर्भ में संरचनात्मक और व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तनों की आशा की जाती है।

आर्थिक सिद्धान्त के संदर्भ में आर्थिक विकास की दो विचारधाराएँ हैं : एक बुनियादी पूर्वापेक्षाएँ जैसे कानून और व्यवस्था, आधारभूत संप्रेषण, विकास के लिए वातावरण बनाने वाली ऊर्जा व अन्य सुविधाओं आदि की स्थापना करना। शेष व्यापार से सम्बन्धित हैं (बाज़ार आधारित)। दूसरी विचारधारा के अनुसार राज्य द्वारा विकास की योजना बनाई जाती है, कार्य किया जाता है तथा संरक्षण किया जाता है।

पहली विचारधारा के अनुसार "स्थानीय स्व-सरकार" की स्थापना से स्थानीय प्रशासन का नवीनीकरण होगा जिसका प्रायः व्यापार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इससे निवेश सम्बन्धी वातावरण में सुधार होने की आशा की जाती है।

स्थानीय विकास योजना की मुख्य विशेषता है लोगों की भागीदारी। ग्रामीण पुनरुद्धार के पिछले प्रयासों की असफलता सामुदायिक विकास कार्यक्रम के आरंभ से ही इन कार्यक्रमों की योजना और कार्यान्वयन में प्रभावी रूप से लोगों की भागीदारी के अभाव के कारण मानी गई। स्थानीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से सहयोगी प्रयास संस्थापित करके सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकेगा।

परिवर्तित प्रबंध में योजना आयोग की भूमिका अब से दीर्घकालीन योजना की तरफ परिवर्तित होने की संभावना है। आई.सी. धींगड़ा (2005) के अनुसार महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे ऊर्जा, परिवहन, सामाजिक क्षेत्र, प्रौद्योगिकी आदि के संदर्भ में विकल्पों को गहराई से तलाशने पर ज़ोर दिया जाना चाहिए।

18.5 योजना निर्माण में आवश्यकताएँ

गरीबी उन्मूलन में रोज़गार उत्पन्न करना मुख्य आवश्यकता है। गरीबी उन्मूलन के संदर्भ में यह स्मरण रखना चाहिए कि यह निम्न स्तर से योजना का मूलाधार है चूँकि शीर्ष-निम्न विचारधारा गरीबी समाप्त करने में सफल नहीं हुई है। जिला योजना समिति के समक्ष मुख्य चुनौती सामाजिक-आर्थिक योजना में निवेश प्रदान करने की है। इसी समय/साथ ही संचालनों का प्रभावी/उपयोगी होना सुनिश्चित करना भी है क्योंकि गैर-योजना राजस्व व्यय पर नियंत्रण करना पहली प्राथमिकता है।

जैसा कि दसवीं योजना में स्पष्ट किया गया है और पहले भी कहा गया है कि नए उदारवादी प्रबंध में राज्य ऐसे क्षेत्रों से पीछे रहा है जहाँ इसका निष्पादन अदक्षतापूर्ण रहा है और वहाँ नागरिक समाज अपेक्षाकृत अधिक संगठित है। यह अच्छे शासन के व्यापक लक्ष्य का ही एक भाग होगा। शासन के गुणवत्ता पहलू की तरफ अधिक ध्यान दिया जाएगा; अतः दसवीं योजना "संसाधन योजना" की अपेक्षा एक "सुधार योजना" होने का उद्देश्य प्रस्तुत करती है। कानून और व्यवस्था सुधारने, बुनियादी सेवाओं जैसे शिक्षा व स्वास्थ्य तथा अन्य का प्रावधान करने जैसे विषयों पर अधिक ज़ोर दिया जाएगा जिसके लिए पंचायत संस्थाओं में नीति में सुधार करना आवश्यक होगा और नागरिक समाज को सुधार करने जैसे संविदा पर कार्मिकों को रखने यूनियनबाजी को समाप्त करने तथा उपयुक्त आकार का प्रशासन, जिसका वर्तमान में अभाव है चलाने आदि, के लिए अधिकार प्रदान करने की आवश्यकता होगी।

ग्रामीण विकास के विषय

नौवीं योजना के मध्यकालीन मूल्यांकन (MTA) दस्तावेज में प्रस्तुत किया गया कि अनुसूचित जाति – अनुसूचित जनजाति के कल्याण, वानिकी और विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित अनेक नियमों में निर्धन

विरोधी नियम हैं। दसवीं योजना में निर्धन समर्थक कार्यक्रम लागू करने के लिए इनमें उपयुक्त संशोधन किया गया। उदाहरण के लिए, मैगसेसे पुरस्कार विजेता राजेन्द्र सिंह ने राजस्थान में रोक-बाँध, टंकी/टैंक और तालाब बनाकर प्राकृतिक जल स्रोतों को पुनः बनाया। यद्यपि ये कार्य कई अधिनियमों का उल्लंघन करते हैं जैसे सिंचाई और जल निकास अधिनियम, जंगली जीव सुरक्षा अधिनियम और वन संरक्षण अधिनियम। इसी प्रकार, कुछ ऐसे भी नियम हैं जो किसानों को सीधे ही उपभोक्ता को सब्जियाँ बेचने से रोकते हैं। नियम उन्हें सब्जियाँ मंडी में बेचने के लिए बाध्य करते हैं। यदि वे अपने उत्पाद को राज्य सीमा से बाहर ले जाते हैं तो वे आवश्यक वस्तु अधिनियम और मंडी अधिनियम का उल्लंघन करते हैं। ऐसे और अनेक अधिनियम हैं जो सरकार का एकाधिकार सुरक्षित करते हैं। जो वास्तव में जनता के विरुद्ध हैं। साइकिल रिक्शा और फेरी वालों के लिए लाइसेंस के प्रावधान प्रशासन में भ्रष्टाचार बढ़ाने के और उनके लिए जीवनयापन के अवसर कम करते हैं। ऐसे अनेक कानूनों की समीक्षा करना आवश्यक है (अय्यर, 2006)।

इसी क्रम में अच्छी उत्तरदायित्व प्रणालियाँ भी लागू करने की आवश्यकता है ताकि उपरोक्त उस भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सके जो ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में 20-70 प्रतिशत कोष नष्ट करता है। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (1993) की रिपोर्ट में कहा गया है और दसवीं योजना में भी रखा गया है कि स्थानीय स्तर पर ज़िम्मेदारी लागू करने में विकेन्द्रीकरण प्रभावी है तथा जहाँ इसे लागू किया गया है उपयोगी कार्य करता है। खेद है कि भारत के अनेक राज्यों में सर्वाधिक परिष्कृत प्रयास सचिवालय और निदेशालयों में संकेन्द्रित हैं। प्रक्रियाएँ और व्यवस्थाएँ भी नौकरशाही के पक्ष में अत्यधिक हैं। इसलिए विकेन्द्रीकरण के कार्य को अधिक प्रबलता/प्रतिबद्धता के साथ लागू करने की आवश्यकता है। इसे स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने और स्थानीय संस्थाओं को भौतिक और वित्तीय संसाधन हस्तांतरित करने के द्वारा लागू किया जा सकता है। इसके साथ ही स्थानीय संस्थाओं को अपने संसाधन जुटाने के लिए प्रेरित किया जाएगा तथा स्थानीय स्तर पर अच्छे कार्य निष्पादन को वित्तीय प्रोत्साहनों से जोड़ा जाएगा। फालतू कार्मिकों को हटाकर नौकरशाही को सुव्यवस्थित करना होगा। खुली और ज़िम्मेदार सरकार प्रदान करने के लिए प्रतिस्पर्धात्मक बोली आदि के माध्यम से प्रक्रियाओं जैसे लेखा परीक्षा, वित्तीय लेन-देन खरीद को सरल और पारदर्शी बनाना होगा। दसवीं योजना (2002-07) में शामिल विशिष्ट विषयों का सारांश निम्नलिखित हैं :

- स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों की सार्वजनिक जिम्मेदारी और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम का विधान।
- नागरिकों के लिए सेवा वितरण मानक स्थापित करने और उन्हें लागू करने के लिए साधन बनाना नागरिकों का अधिकार;
- शीघ्र न्याय प्रदान करने और मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए लोक अदालतों (जनता का न्यायालय) और न्याय पंचायतों जैसी नई व्यवस्था के माध्यम से प्रभावशाली कानूनी व्यवस्था; और
- सरकार का आकार ठीक करने और कार्य *व्यवहार की लागत* (transaction costs) कम करने के द्वारा प्रशासनिक खर्च कम करना। दूसरे शब्दों में प्रक्रियात्मक जटिलता या नियमों और विनियमों में चालाकी की गुंजाइश के कारण प्रशासनिक स्व-विवेकाधिकार और राजनीतिक सहारा लेने वाला व्यवहार समाप्त करना।

वित्तीय सुधार शीघ्र किए जाएँगे। वर्तमान में अधिकांश राजस्व ऊर्जा, जल आदि जैसी जन सेवाओं का भुगतान प्राप्त नहीं होने के कारण व्यर्थ चला जाता है। सेवाओं की वित्तीय उत्पादक क्षमता के लिए उनका श्रेष्ठ कार्यान्वयन आवश्यक है। राज्यों को बाहरी सहायता के स्रोत को अधिक सुरक्षात्मक ढंग से ग्रहण करना चाहिए जो वर्तमान में सीमा रहित है (अनुच्छेद 293) और पूरी तरह राज्य सरकारों

की इच्छा पर निर्भर करती है। कर दरों के मामलों में राज्यों में अधिक श्रेष्ठ अंतर्राज्यीय सहयोग होना चाहिए जो कि अभी राजस्व के मामलों में कुछ राज्यों को अनुचित लाभ मिलता है। इसकी बजाय निवेश के लिए श्रेष्ठ अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और देश को राज्यों में परस्पर नकारात्मक सामाजिक पूँजी की प्रकृति में प्रतिस्पर्धात्मक नहीं अपितु सहयोग की आवश्यकता के साथ एकल आर्थिक स्थल के रूप में देखना चाहिए। इस सम्बन्ध में मूल्य वर्धित कर (वैट) (Value added tax; VAT) की पूरी सिफारिश की जाती है। राज्य के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के ऋणों की वर्तमान में राज्य द्वारा गारंटी बढ़ाने से भी राज्यों में वित्तीय संकट बढ़ा है। जैसा कि कुछ राज्यों में प्रयास किया गया है ऐसी गारंटियों पर कानूनी आवरण से समस्या का प्रभावी समाधान किया जा सकता है। ग़ैर-योजना खर्च के दबाव ने राज्यों को आवश्यक पूँजी खर्च कम करने पर विवश कर दिया है। प्रशासनिक खर्च और स्थापना शुल्कों के द्वारा ग़ैर-योजना राजस्व व्यय दबाव के कारण राज्यों को पूँजीगत संपत्ति को बनाए रखने के लिए भी समझौता करना पड़ा है। इसी बाधा/विवशता के कारण पर्यावरणीय समस्याओं को भी दूर नहीं किया जा सकता। पहली बार दसवीं योजना में पूँजीगत संपत्तियों को बनाए रखने के लिए योजना सहायता प्रदान की गई है। राज्यों में वांछित सुधारों के लिए सुधार संबद्ध सहायता का प्रस्ताव किया गया है। अब इससे फालतू कार्मिकों को कम करना बहुत ज़रूरी हो गया है। योजना प्रस्तावों को इस अर्थ में युक्तिसंगत बनाने की आवश्यकता है कि प्रस्तावित खर्च का व्यापक विवरण बनाना आवश्यक है जिसका अनुमान कम नहीं होना चाहिए जोकि कई बार स्वीकृति प्राप्त करने के लिए जानबूझ कर किया जाता है। निवेश आवश्यकताओं का अनुमान अधिक लगाया जिससे अधिक भार बढ़ जाता है। यह तब होता है जब विभिन्न क्षेत्रों में सीमाओं के अनुमान और निवेश की आवश्यकताएँ उपयुक्त रूप से स्पष्ट नहीं होती। मज़बूरी में तदर्थ आबंटन भी करना पड़ता है जिससे योजना आबंटन में प्राथमिकता निर्धारण में व्यवधान आता है। प्रतिबद्ध लागत और पूँजी वितरण श्रेष्ठ ज्ञान बोध के लिए अलग से निर्धारित करने की आवश्यकता है। चल रही योजनाओं में संसाधनों के दबाव को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकताएँ निर्धारित करना आवश्यक है। उन अधूरी परियोजनाओं को पूरा करना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए जो लगभग पूरी होने वाली है न कि उन्हें जो अभी लगभग 10 प्रतिशत ही पूरी हुई हैं। उस प्राथमिकता के लिए एक पारदर्शी मानदंड की आवश्यकता है जिसके लिए राज्य अनिच्छुक हैं क्योंकि इससे शामिल विकल्पों के बारे में स्व-विवेकाधिकार में कमी आएगी। फिर भी सार्वजनिक हित में तर्क संगत आधारों पर विनिर्दिष्ट मानदण्ड के द्वारा मनमाने कार्यकारी विकल्पों की संभावना को कम करना चाहिए क्योंकि इससे गलत आबंटन और बाद में संसाधनों को व्यर्थ होने से बचा जा सकेगा। अंत में बजट के अनुरूप योजना की अवधि और कार्यक्रम बनाने का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। योजना की प्राथमिकताएँ बजट में विशेष रूप से प्रकट होनी चाहिए। प्रायः इन्हें समय रहते स्पष्ट नहीं किया जाता है इसलिए इनकी सार्थकता समाप्त हो जाती है। अतः एक कठोर वार्षिक कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए तथा बजट के साथ सामंजस्य बनाकर उसका पालन करना चाहिए (दसवीं योजना, 2002-07)।

आर्थिक सहायता को अधिकांशतः वापिस ले लिया जाएगा। आर्थिक सहायता सकल घरेलू उत्पादन की 14 प्रतिशत ही रही है जिसके बारे में ज्ञात हुआ है कि ऊर्जा और उर्वरक जैसी आर्थिक सहायता का अधिक लाभ बड़े किसानों को हो रहा है। खाद्य, शिक्षा और स्वास्थ्य पर आर्थिक सहायता का भरपूर लाभ शहरी आबादी और धनी ग्रामीण क्षेत्रों को मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके कार्यान्वयन ने अधिकांशतः संसाधन व्यर्थ करने और भ्रष्टाचार की समस्या पैदा की है। फिर भी आर्थिक सहायता समाप्त करने का मामला विवाद का विषय है क्योंकि इस पर यह विवाद हो सकता है कि आर्थिक सहायता समाप्त करने से निर्धन और विशेषतः उन लोगों को काफी कष्ट होगा जो केवल सरकारी योजनाओं के माध्यम से आर्थिक सहायता प्रावधान वाले खाद्य पर निर्भर हैं और आर्थिक सहायता प्रदान करने का मुख्य विषय लक्षित कार्यान्वयन है न कि ऐसे ही आर्थिक सहायता प्रदान करना। नय्यर के अनुसार यदि अमेरिका और यूरोपीय संघ (EU) में खेती पर से आर्थिक सहायता हटा ली जाए तो विश्व

में मुख्य अनाजों के मूल्यों में वृद्धि हो जाएगी। अपने देश में उत्पादन स्थिर रहने से निर्धन भोजन का खर्च वहन नहीं कर सकेंगे। नए उदारवादी वातावरण में भारत जैसे विकासशील देश के लिए सामान्य व्यक्ति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों विशेषतः कृषि जिस पर अधिकांश आबादी निर्भर करती है को अपनी पकड़ में रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कैसे सहायता कर सकता है? आशा की जाती है कि स्थानीय स्तर पर योजना के संस्थात्मक होने से ग्रामीण क्षेत्रों में अति आवश्यक भूमि सुधार करना आसान हो जाएगा और यह भी आशा है कि निर्धन वर्ग की आवाज की सुनवाई होगी क्योंकि स्थानीय नेताओं तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। कुछ विषय जैसे मोटे अनाज उत्पादन को प्रोत्साहित करना स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह संभाले जा सकते हैं। जैसा कि दसवीं योजना में स्पष्ट किया गया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आर्थिक सहायता की राष्ट्रीय नीति को लागू करना कठिन है क्योंकि मोटे अनाज की उपयोग पूर्व अवधि काफी कम होती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के एक भाग के रूप में विकेन्द्रित प्राप्ति पर विचार किया जा रहा है। स्थानीय स्तर पर लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System; PDS) के लिए आर्थिक सहायता के पात्र कार्ड जारी करने के लिए गरीबी रेखा से नीचे (Below the poverty line; BPL) के लोगों की पहचान करना अच्छा प्रयास हो सकता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण नीति परिवर्तन श्रमिक आधारित ग्रामीण विकास योजनाओं से हटकर पूँजी आधारित योजनाएँ बनाना है। उदाहरण के लिए ग्रामीण श्रमिकों को अस्थायी रोज़गार प्रदान करने वाली अस्थायी श्रमिक आधारित योजना के अंतर्गत बनाई जाने वाली अस्थायी सड़कों की अपेक्षा सभी मौसमों में टिकने वाली सड़कें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं (अय्यर, 2005)।

कृषि

खाद्यान्न के भरपूर भंडार के सरकारी दावों के बावजूद देश भूखमरी की तरफ बढ़ता जा रहा है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रति मास कृषि का घरेलू औसत खर्च 500 रुपये से थोड़ा अधिक है। ग्रामीण गरीबी रेखा से लगभग 75 रूपये अधिक। चूँकि यह सभी क्षेत्रों, वर्गों और आमदनी समूहों का औसत है अतः यह आँकड़ा बताता है कि लाखों परिवार निराशाजनक गरीबी की रेखा से नीचे रहते हैं। के. पी. प्रभाकरण नय्यर (2006) इसे खाद्यान्न उत्पादन में हुई अत्यधिक कमी का कारण मानते हैं क्योंकि भारतीय कृषि वैज्ञानिक श्रेष्ठ फसलें उत्पादित करने में अक्षम रहे। कम उपलब्धता ने खाद्यान्न को महँगा कर दिया। चीन ने पिछले वर्ष 55 करोड़ टन खाद्यान्न का उत्पादन किया है जबकि भारत का उत्पादन 20 करोड़ टन तक सीमित रह गया। 1991-96 की आठवीं योजना में औसतन वार्षिक कृषि वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत थी जो वर्तमान दसवीं योजना (2002-07) के पहले तीन वर्षों में 1.1 प्रतिशत कम हो गई। यदि वर्तमान वृद्धि प्रवृत्तियाँ जारी रहती हैं तो खाद्यान्नों, दालों, तिलहनों की कमी और भी खराब हो सकती है। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India; FCI) का बड़ा भण्डार घट गया है। खाद्यान्नों, तिलहनों और दालों की निरंतर कमी के कारण मूल्यों में और वृद्धि होने की संभावना है। नय्यर के अनुसार बागवानी की तरफ वर्तमान परिवर्तन को गलत समझा/बताया गया है। भारतीय कृषि नीति खाद्यान्नोन्मुखी होनी चाहिए। उत्पादन को बढ़ाने के लिए गहन प्रयास आवश्यक हैं। सुझाए गए उपायों में शामिल हैं सही भूमि प्रबंधन तकनीकों जैसे अच्छे पोषक तत्वों आदि के माध्यम से अत्यधिक विस्तृत भूमि का अपेक्षाकृत सही उपयोग करना (विश्व की 11 प्रतिशत की तुलना में 51 प्रतिशत कृषि भूमि है)। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि जमीनों का समेकन और भूमि सुधार के कार्य स्वतंत्रता के बाद से आधी शताब्दी बीत जाने के बाद अभी भी पूरे नहीं हुए हैं। भारत की जोत भूमि में लगभग 13 करोड़ किसान और 11 करोड़ श्रमिक कार्यरत हैं। इस प्रकार औसतन प्रति व्यक्ति कृषि भूमि 1.4 हेक्टेयर है। ऐसे छोटे खेतों को औसतन ऐसे 6.5 व्यक्तियों की सहायता करनी होती है जिनकी न्यूनतम मासिक आमदनी कम से कम 2,500 रूपये हो सके। जमीन की कम उत्पादकता से

कृषि मूल्यों में स्थिरता नहीं रहती जिससे भारतीय किसान को भोजन के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है।

एस. पी. सिंह (2004-05) के अनुसार आर्थिक सुधारों विशेषतः कृषि में सार्वजनिक निवेश में कमी, सस्ते निवेश जिनकी तुलना स्थानीय उत्पादों से की जाती है, पूँजी आधारित प्रौद्योगिकी जिसने मानव श्रम पर निर्भरता को कम कर दिया, ने कृषि क्षेत्र की वृद्धि को विकृत कर दिया है। ये भूमंडलीकरण विवशताएँ हैं। तो भी इन बाधाओं के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर बढ़ाने और गरीबी कम करने के लिए हमें उपाय तलाशने होंगे। कृषि में सार्वजनिक निवेश की कमी से कृषि से निजी निवेश पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध ऊर्जा, सड़क, सिंचाई, अनुसंधान और विस्तार में सार्वजनिक निवेश से है। इसके अतिरिक्त निजी निवेश का स्वरूप भिन्न है इसलिए यह सार्वजनिक निवेश का विकल्प नहीं हो सकता। विखंडन के कारण भारत में संचालनात्मक संपत्ति में वृद्धि हुई है। विखंडन में वृद्धि होने से खेती की संपत्ति और मशीनों की माँग में वृद्धि होती है। इसलिए पूँजी में निजी निवेश होने से छोटे किसान ऋणग्रस्त हो जाते हैं और उन्हें अपनी पूँजीगत संपत्ति का इस्तेमाल करना पड़ता है। उदारीकरण के बाद सरकारी नीति सार्वजनिक निजी साझेदारी के माध्यम से कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए किसानों को नवीनतम प्रौद्योगिकी प्रदान करने की तरफ प्रवृत्त हो गई है। जिससे उत्पादन, फसल कटाई, विपणन, भण्डारण और संसाधन सम्बन्धी मूलभूत सुविधाओं में नवीनतम प्रौद्योगिकी सुलभ होगी। फिर भी इससे पूँजीवादी कृषि में लाभ होगा या छोटे या सीमांत किसानों के संसाधन आधार को मज़बूत बनाने की अपेक्षा बड़े किसानों को लाभ होगा। छोटे खेत होने के कारण नई प्रौद्योगिकी अधिक उपयोगी नहीं होगी तथा कृषि की लागत इकाई में वृद्धि हो जाएगी। इसलिए छोटे और सीमांत किसानों की स्थिति को मज़बूत बनाने के तरीके ढूँढने होंगे। यह कार्य स्व-सहायता समूह गतिविधियों और एक व्यक्ति की अपेक्षा समूहों को ऋण प्रदान करने के द्वारा किसानों में सहकारी समूह प्रयास को प्रोत्साहित करके किया जा सकता है। ये स्व-सहायता समूह गैर-सरकारी संगठनों और अन्य नागरिक समाज कार्यकर्त्ताओं के बनाए जा सकते हैं जिसमें पंचायत संस्थाओं के मार्गदर्शन में कृषि विस्तार कार्मिक भी शामिल हैं। राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने अप्रैल 2002 में आई आर एम ए (IRMA) स्नातकों को संबोधित करते हुए अपने दीक्षांत समारोह में "भूमि विश्लेषण, बीजों का चयन, बुआई के मौसम, उर्वरकों का चयन तथा किसानों को प्रशिक्षण विशेषतः भण्डारण, विपणन और बैंकिंग प्रणाली सहित दूरस्थ सार्थक आँकड़ों के उपयोग में प्रशिक्षण प्रदान करने सहित कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने वाली व्यवस्थित विचारधारा" की आवश्यकता बताई थी" (जैन 2004-05)।

एस.पी. सिंह के अनुसार भूमंडलीकरण के नकारात्मक प्रभावों का संरक्षणात्मक प्रयासों के द्वारा सरकार की तरफ से प्रतिकार करना होगा। ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम जो न्यूनतम निर्धारित मजदूरी पर 100 दिनों के लिए इच्छुक प्रत्येक ग्रामीण घर में से एक सदस्य को रोज़गार की संवैधानिक गारंटी प्रदान करता है जैसे उपाय नए उदारीकृत प्रबंध में और अधिक लाभ प्राप्त करने वाले धनी वर्ग के मुकाबले निर्धन वर्ग की स्थिति सुधारने में दीर्घकालीन प्रभाव डालेंगे। इसका शहरी अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा क्योंकि आमदनी और रोज़गार के केन्स के सिद्धान्त के अनुसार ग्रामीण आमदनी में वृद्धि होने से शहरी क्षेत्रों की वस्तुओं के लिए माँग में वृद्धि होगी।

इसलिए विकास योजनाकारों के सामने स्थानीय स्तर पर उस निर्धन वर्ग के अधिकारों की रक्षा करने की चुनौती होगी जो नए प्रबंध में फिर उपेक्षित हो सकते हैं। रोज़गार उत्पन्न करने के लिए नए समाधान ढूँढने की आवश्यकता होगी। रोज़गार उत्पन्न करने के बंजर भूमि विकास, जल संरक्षण और संचय, नहर रखरखाव, ग्रामीण सड़क निर्माण और रखरखाव तथा सामाजिक वानिकी आदि में काफी अवसर हैं (तत्रैव)।

इस उद्देश्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य शासन के उच्च स्तरों अर्थात् केन्द्रीय विधानमंडल स्तर

पर इच्छा शक्ति पैदा करना और दबाव बनाना अथवा समझाना है जहाँ निर्देशात्मक नीति परिवर्तन प्रभावी होती है।

रोज़गार उत्पन्न करना

कृषि में कम सार्वजनिक निवेश के कारण गाँवों में रोज़गार के अवसर कम हो गए हैं। अतः वैकल्पिक अवसर तलाशने होंगे। चूँकि निजी निवेश अधिकतर बागवानी व अन्य क्षेत्रों जैसे ग़ैर-कृषि क्षेत्रों में होता है अतः इन गतिविधियों में भूमि परिवर्तन हुआ है। आई. सी. धींगड़ा (2005) के अनुसार रोज़गार उत्पन्न करने में ग्रामीण ग़ैर-कृषि क्षेत्र (Rural Non-farm sector; RNFS) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी क्योंकि शहरी क्षेत्र में रोज़गार उत्पन्न करने की सीमित क्षमता है और कृषि भी हमेशा बढ़ने वाले ग्रामीण कार्यबल को रोज़गार के सीमित अवसर ही प्रदान कर सकती है। ग्रामीण ग़ैर-कृषि क्षेत्र में ग्रामीण नगरों और छोटे नगरों में स्थित कृषि कार्य को छोड़कर सभी ग़ैर-कृषि कार्य शामिल हैं। अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खोलने से भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता पर ज़ोर देने की आशा है। इसके लिए व्यापारिक केन्द्रों के अच्छे बाज़ार संपर्क और बड़े तथा मध्यम उद्योगों के बीच संपर्कों की एक अच्छी समन्वित नीति की भी आवश्यकता है। निजी क्षेत्र और ग़ैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी को भी सक्रिय रूप से प्राप्त किया जाना चाहिए। इससे प्रतिस्पर्धा होगी तथा श्रेष्ठ गुणवत्ता विकास, प्रौद्योगिकी, मानक निर्धारण और दक्षता का विकास सुनिश्चित होगा। ग्रामीण-शहरी संपर्क महत्त्वपूर्ण होगा। कृषि और कृषि आधारित कार्यों की स्थायी प्रगति सुनिश्चित करने के लिए गाँवों को शहरों से जोड़ने के लिए मूलभूत सुविधा विकास को बढ़ावा देना महत्त्वपूर्ण होगा। छोटे और मध्य नगरों का विकास तथा ग्रामीण पृष्ठ प्रदेशों व अर्धशहरी नगरों से उनका संपर्क बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त उदारीकरण और शहरी कानूनों में सुधार जैसे संपत्ति कर आदि से शहरी क्षेत्रों में आधारभूत सुविधा विकास में तेज़ी आएगी जिसका ग्रामीण क्षेत्रों में सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

मानव संसाधन विकास

व्यापार विशेषतः सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology; IT) क्षेत्र में अवसरों का लाभ उठाने के लिए मानव पूँजी संघटन में निवेश करने की आवश्यकता है। इसके लिए बजट में संसाधन आबंटित करने के द्वारा आवश्यक प्रेरणा/प्राथमिकता के आधार पर शिक्षा प्रदान करनी होगी। इसके अतिरिक्त दसवीं योजना में उद्धृत दक्षिण एशियाई विकास रिपोर्ट संकेत करती है कि कम मानव विकास तालिका के कारण संवेदनहीन प्रशासन फलता-फूलता है। सशक्तिकरण के लिए सूचना का अधिकार और नागरिक अधिकार जैसे उपायों को प्रभावी बनाना होगा तथा मानव विकास को आवश्यक बनाना होगा।

फिर भी दुविधा यह है कि कार्मिक व्यय बढ़ जाएगा जिससे राज्यों में कुल ग़ैर-योजना राजस्व व्यय में वृद्धि होगी जो वित्तीय असंतुलन का मुख्य कारण है। फिर भी कुछ नए प्रयोग किए जा सकते हैं। मध्य प्रदेश और राजस्थान ने प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों को संविदात्मक रोज़गार संसाधन को अपनाया है। उत्तर प्रदेश ने निजी शिक्षण संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिए बार-बार अनुदान सहायता देने की अपेक्षा एकल बार पूँजी अनुदान देने की व्यवस्था को अपनाया है (सिंह, 2004-05)।

ग्रामीण ऋण (Rural Credit)

59वें बार के सर्वेक्षण में राष्ट्रीय सांख्यिकी अनुसंधान संगठन (NSSO) द्वारा संकलित आँकड़ों के अनुसार लगभग 4.8 करोड़ ग्रामीण परिवार हैं उनमें से 4 करोड़ परिवार अत्यधिक निर्धनता में रहते हैं जिनकी आमदनी 30 रुपये प्रतिदिन से भी कम है। अन्य 2 करोड़ केवल जीवनयापन स्तर पर रहते हैं। शहरी क्षेत्रों में लगभग 1.5 करोड़ परिवार अत्यंत निर्धन हैं। इसलिए विकास योजना में छोटे ऋणों की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। सिडबी (SIDBI) और अन्य संस्थाएँ ग़ैर-सरकारी संगठनों को अनुदान सहायता प्रदान कर उनकी वित्तीय क्षमता बनाने का प्रयास कर रही हैं। फिर भी, इस अभियान में तेज़ी

लाने की आवश्यकता है क्योंकि इसका विस्तार अभी काफी सीमित है। आशा है कि गाँवों में बेरोज़गार युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सकेगा और उन्हें विस्तार कार्यकर्त्ताओं के रूप में शामिल किया जाएगा। इन 7.5 करोड़ पिरामिडीय वर्ग (Pyramid segment; BOP) की मज़बूत आधार की ऋण माँग का अनुमान लगभग 5 खरब है। बैंक इस क्षेत्र के सम्बन्ध में अपनी ऋण प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में संकोच करते हैं क्योंकि यह काफी जोखिम भरा कार्य है अतः बैंक-स्व-सहायता समूहों (SHG) के सहयोग से एक नया समाधान तलाश रहा है। धीरे-धीरे उत्पादन और उपभोग के लिए प्रदान किए जाने वाले ऋण से सूक्ष्म संविदात्मक स्तर और बाद में लघु उद्यम स्तर पर लघु ऋण प्रदान करने में गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करने के अवसर बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए। इसके लिए एस.एच.जी. एस. को नेटवर्क युक्त उन्नत वित्तीय और प्रबंधात्मक क्षमता की आवश्यकता होगी (सिंह 2005)। भूमंडलीकरण के ग्रामीण ऋण पर पड़ने वाले प्रभावों के विचारों में भिन्नता है। अमादीप राय (2005) के अनुसार संघीय सरकार ने संयुक्त उपक्रमों के लिए विदेशी सहयोगों, औद्योगिक लाइसेंसों तथा 100 प्रतिशत निर्यातोन्मुखी इकाइयों के प्रस्तावों की अनुमति प्रदान की है।

ये प्रस्ताव 19,100 करोड़ रुपये के निवेश अवसर का विचार करते हैं। इससे सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए व्यापक कार्य अवसर उत्पन्न होते हैं। यद्यपि अधिकारीगण पिछड़े क्षेत्रों में लघु और उपेक्षित किसानों को ऋण देने के बैंकिंग क्षेत्र के प्रयासों से कुल मिलाकर प्रसन्न नहीं हैं क्योंकि ग्रामीण ऋण पर अभी भी साहूकारों की मज़बूत पकड़ है। राय के अनुसार भावी स्थिति आशाजनक है। राय के अनुसार चूँकि शहरी बैंकिंग ऋण स्थिति दिन-प्रतिदिन अव्यवस्थित होती जा रही है, यह दीर्घकाल तक नहीं चलेगी क्योंकि निजी बैंकों ने विवादित ही सही ग्रामीण बाज़ार की तरफ देखना आरंभ कर दिया है। 27 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के साथ ये कृषि में निवेश को बढ़ा सकेंगे। वर्गीज (2005) के अनुसार यह पूरी तरह सत्य नहीं है कि किसान अपने ऋण को लौटाते नहीं। साहूकार अभी भी फल फूल रहा है क्योंकि वह समय पर सेवा प्रदान करता है। इस प्रकार वह ए.टी.एम. की तरह तत्काल धन उपलब्ध करा देता है। इस प्रकार कठोर संस्थात्मक धन से परे जाकर व्यक्ति को इस समाधान के बारे में सोचना चाहिए। वर्तमान में दस्तावेजी प्रक्रियाएँ बोझिल हैं अर्थात किसानों को स्टांप ड्यूटी तथा पंजीकरण शुल्क आदि चुकाना पड़ता है जिससे ऋण काफी महँगा पड़ता है। इसे तर्कसंगत बनाया जा सकता है। ग्रामीण आधारित सुविधाओं में सुधार और बुनियादी सेवाएँ जैसे विद्यालय, चिकित्सालय आदि से बैंक कार्मिकों को गाँवों में रहने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। चूँकि बैंक कार्मिक गाँवों में तैनाती पर जाना नहीं चाहते अतः ग्रामीण अधिकारियों के लिए एक अलग संवर्ग बनाया जा सकता है। जहाँ तक ऋण लौटाने के सम्बन्ध में विचार किया गया है किसानों को प्रशिक्षण, ऋण और आवश्यक उत्पादन बाज़ार की मूलभूत सुविधाएँ आदि प्रदान करने के द्वारा किसानों की ऋण उपयोगिता में सुधार करने के प्रयास किए जाने चाहिए ताकि वे उपेक्षित या जीविका श्रमिक से लघु उद्यमी और लघु संविदाकार बनने की अगली सीढ़ी पर पहुँच सकें (सिंह 2005)। इसके अतिरिक्त ऋण की पुनः अदायगी को अच्छी तरह से मॉनीटर किया जाए तथा किसान द्वारा उसको एक समय में छोटे हिस्सों में लेना आसान भी बनाया जाना चाहिए। यह कार्य लघु और मध्यम उद्यमी क्षेत्र जैसे समूहों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा आरंभ किए जाने की आवश्यकता है।

निजी बैंक, ग्रामीण ऋण का जोखिम नहीं उठाते क्योंकि यह लाभदायक नहीं है। इसको जोखिम समझते हुए वे उसे लाभदायक क्षेत्र मानते हैं जिसमें बड़े किसान व्यावसायिक फसलों का कार्य करते हैं। आमदनी असंतुलन कम करने का मूल कार्य मुख्यतः पूरा नहीं होगा। इसलिए कृषि को एक आकर्षक व्यवसाय प्रस्ताव बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए। यह कार्य भूमि सुधार अर्थात् कृषि भूमि को समेकित करने और बाढ़ आदि जैसी आपदाओं से क्षति को कम करने के लिए विकास योजना के एक भाग के रूप में जोखिम को कम करने के द्वारा किया जा सकता है। और यह कार्य सूखा, बाढ़ आदि के मामले में किसानों को बीमा सुविधाएँ प्रदान करके किया जा सकता है। मूल्य उतार-चढ़ाव

को संभालने के लिए वर्तमान में किसानों के पास भविष्य की संविदाएँ करने जैसे विकल्प नहीं हैं जहाँ वे फसल के समय अच्छे मूल्य पर अपनी फसलें बेच सकें। इस पर भी विचार किया जाना चाहिए (रवि कुमार, 2005)।

लोक प्रशासन

ग्रामीण विकास के हित में समाधान किए जाने की आवश्यकता वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय है कि क्या यह साधारण व्यक्तियों का कार्य क्षेत्र/अधिकार क्षेत्र है या विशेषज्ञों का? उपरोक्त विषय को देखते हुए यह एक तकनीकी कार्य है और इसलिए यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि धर्म तंत्र वैज्ञानिक को रोक नहीं सकता। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि हरित क्रांति के दौरान कृषि वैज्ञानिक कुंठाग्रस्त थे क्योंकि उन्हें धर्मतंत्र से निम्न स्तर पर रखा गया था और सामान्य व्यक्तियों के अधीनस्थ माना गया तथा अधिकतर अवसरों पर उनके सुझाव नहीं माने गए थे।

शहरी योजना के विषय

शहरी योजना में जटिल विषय सामने आते हैं क्योंकि शहरीकरण बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। आज का महत्त्वपूर्ण प्रश्न शहरों के स्थायी बने रहने का है क्योंकि पर्यावरण सुरक्षा के सरोकार और आपदा कम करने को मुख्यतः शहरी वातावरण से जोड़ा जाता है। यह केवल भारत की समस्या नहीं है अपितु विकसित देशों में भी विकास की विशेषता है। शहरों का विकास "ज्ञान अर्थव्यवस्था" की आवश्यकता के अनुसार हो रहा है। लोगान और मोल्टक ने शहरों की विकास गति के लिए संरचना और परिस्थितियों को प्रभावित करने वाली तीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की पहचान की है :

1) तकनीकी क्रांति

2) विश्व अर्थव्यवस्था की संरचना; और

3) अर्थव्यवस्था, उत्पादन और प्रबंध का एक सूचना मंच का बनना।

विलासतापूर्ण कमरे, कार्यालय, स्थान आवश्यकता आदि शहरों के विकास के सूचक हैं। औद्योगिक शक्ति की अपेक्षा ज्ञान शक्ति पूरे विश्व में प्रगति को आगे बढ़ा रही है। पर्यावरण सुरक्षा और आपदा शमन जैसे नए सरोकार विकास योजना के कारक बन गए हैं जो मुख्यतः शहरी प्रगति से सम्बन्धित हैं। शहरी क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं के विकास को सहज बनाने के लिए कानूनों को तर्कसंगत बनाया जाएगा। वर्तमान में निर्माण कार्यों के लिए भूमि की आसानी से उपलब्धता और कृषि भूमि का अन्य कार्यों के लिए उपयोग करना कानूनन प्रतिबंधित है। यदि ऐसे कानूनों को रद्द कर दिया जाए तो विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को अधिक आकर्षित किया जा सकता है। ये अधिनियम शहरी भूमि सिलिंग अधिनियम हैं जिन्हें केन्द्र और कई राज्यों में पहले ही रद्द किया जा चुका है। भूमि राजस्व अधिनियम, भूमि सुधार कानून, स्टैंप ड्यूटी अधिनियम, और शहरी विकास प्राधिकार अधिनियम व नगर योजना अधिनियमों का अवैध बस्तियों के रूप में परिणाम सामने आया है क्योंकि वैध कानूनों से भूमि प्राप्त करना कठिन है।

शहरी योजना पद्धति से अत्यधिक असंतोष है। मास्टर प्लान सुरक्षित/संतोषजनक भौतिक वातावरण बनाने में असफल रहा है। पिछले समयों से शहरी विकास योजना प्रक्रिया अनुचित रूप से लम्बी हो गई है और परिवहन व्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण और वित्तीय विषयों के प्रावधान पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। निर्धारित लक्ष्य अवास्तविक थे और उन्हें निवेश कार्यक्रमों एवं पूँजी बजटों से नहीं जोड़ा गया था (तिवारी, 2005)। 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम नगरपालिकाओं के विकास को नागरिक सुविधाएँ प्रदान करने वाले सामान्य अभिकरणों की अपेक्षा उन्हें आर्थिक और सामाजिक योजना के लिए संस्थाओं के रूप में विकसित करना आवश्यक बनाता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 243 डब्ल्यू

के अनुसार शहरी स्थानीय संस्थाओं को आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ बनाने के कार्यकारी दायित्व सौंपे गए हैं। "शहरी गरीबी मिटाना" को बारहवीं सूची में स्थानीय शहरी समस्याओं के क्रियात्मक दायित्व के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इसका एक विशिष्ट उद्देश्य शहरी स्थानीय संस्थाओं को "स्वशासन की संस्थाओं" के रूप में विकसित करना है। इसके लिए स्थानीय संस्थाओं को आवश्यक कार्य सौंपना और आवश्यक अधिकार एवं दायित्व सौंपने की ज़िम्मेदारी राज्य सरकारों की है। नागरिक, परिवहन, आर्थिक और सामाजिक सेवाओं में शामिल अभिकरणों के ठोस प्रयास के द्वारा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की संघटित योजना बनाने के लिए जिला योजना समितियों और महानगर योजना समितियों का गठन किया जाना है। नागरिकों और प्रशासन के मध्य निकट पारस्परिक संपर्क के लिए वार्ड समितियों की संरचना एक और महत्त्वपूर्ण विकास है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में अभिव्यक्त मूल भावना के अनुरूप अनिवार्य अपेक्षाओं के वास्तविक कार्यान्वयन अलग-अलग राज्यों में प्राप्त सफलता की सीमा/अंश निर्धारित करना महत्त्वपूर्ण होगा। वर्तमान में योजना में राज्येतर अनेक विकास प्राधिकरण शामिल हैं और ये प्राधिकरण स्थानीय संस्थाओं के साथ बिल्कुल दायित्व बँटवारा करना नहीं चाहते हैं। क्षेत्रीय, राज्य और राष्ट्रीय कार्यनीतियों और मानव बस्तियों के बीच संविधान, कार्यकारी और अन्य सम्बन्धों का ध्यान कर बनाने वाली संघटित शहरी विकास योजना विचारधारा को अधिक मान्यता नहीं दी गई है। यह महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय प्रगति के संदर्भ में विकास प्राथमिकताओं या असमानताओं में कोई शहरी बनाम ग्रामीण विवाद नहीं है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता और शहरी क्षेत्रों में भूमि उपलब्धता के अभाव के कारण गाँवों से शहरों की तरफ पलायन का मार्ग नहीं है (दसवीं योजना, 2002-07)।

राज्यों में शहरी विकास योजना के प्रयास देश में समग्र आर्थिक विकास योजना के अनुरूप नहीं हुए हैं। वर्तमान में शहरी केन्द्रों का मुश्किल से 20 प्रतिशत में मास्टर प्लान है और वह भी सीमित स्तर पर जैसे कि यह एक नीति दस्तावेज मात्र है। अनुमान है कि योजना निर्माण के लिए ज़िम्मेदार विभिन्न अभिकरणों द्वारा लगभग 1200 मास्टर प्लान बनाए गए हैं लेकिन समन्वय समस्या और संसाधन बाधाओं के कारण उनका कार्यान्वयन मुसीबत में फँस गया। मास्टर प्लान का कार्यान्वयन शहरों के स्थाई रूप से व्यवस्थित और योजना पूर्ण विकास को सहज बनाता है जो अंत में श्रेष्ठ शासन के महत्त्व को बढ़ाता है लेकिन कार्यान्वयन में अभीष्ट का काफी कुछ छूट जाता है (तिवारी, 2005)।

पंचवर्षीय योजनाओं ने नगर योजना बनाने और एक राष्ट्रीय नगर योजना अधिनियम बनाने पर ज़ोर दिया है ताकि जोनों और भूमि उपयोग, लालफीताशाही के विकास पर नियंत्रण, उद्योगों के लिए स्थान, बस्तियों को हटाने, नागरिक और नैदानिक सर्वेक्षणों और मास्टर प्लानों के लिए कानून प्रदान किए जा सकें। योजनाओं को अपनाने और कार्यान्वयन के लिए राज्यों द्वारा व्यापक कार्यवाही नहीं की जाती। राज्य सरकारें भी स्थानीय संस्थाओं को विद्यमान विकास प्राधिकरणों के संयोजन में योजना अभिकरणों के रूप में विकसित करने में अधिक रूचि लेती दिखाई नहीं देती। राज्य वित्त आयोगों में नियुक्त सदस्यों की विशेषताओं और उनकी सिफारिशों को राज्य सरकारों द्वारा स्वीकार करने की इच्छा शक्ति निर्धारण करेगी कि स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति वास्तव में किस सीमा तक मज़बूत है। यद्यपि शहरी विकास के प्रति सजगता में वृद्धि हो रही है तो भी राज्य वित्त आयोगों द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को अधिक महत्त्व दिए जाने की भी संभावना रहती है। शहरी स्थानीय संस्थाओं को अपने संसाधन आधार को मज़बूत बनाने के उपाय करना भी आवश्यक है। वर्तमान में अच्छी प्रगति वाले शहर संसाधन जुटाने के लिए क्षमताओं का कम उपयोग कर रहे हैं और कम प्रगति वाले शहरों के पास धन की कमी रहती है। संपत्ति कर सुधार की तत्काल आवश्यकता है। कर मूल्यांकन अपेक्षाकृत कठिन है जिससे संपत्तियों का वास्तविक मूल्य स्पष्ट नहीं होता इसका स्थानीय संस्थाओं के राजस्व में काफी महत्त्व है। इसे अधिक उत्साहवर्धक और पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है। अन्य संभावित संसाधनों का भी उपयोग किया जा सकता है। प्रयोक्ता शुल्क को संशोधित करने और उसके श्रेष्ठ संग्रहण की

भी आवश्यकता है जो स्थानीय संस्थाओं के लिए राजस्व का एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत है। ग़ैर-शुल्क राजस्व स्रोतों को भी पुनः आरंभ करने, स्थापित करने अन्य लागतों को कम करने और नगरपालिका के लेखों को ऋण अभिकरणों व वित्तीय बाज़ारों की आवश्यकताओं के अनुसार अधिक लचीला बनाने की आवश्यकता है। लेखाकरण के वास्तविक आधारित प्रणाली अपनाने की सिफारिश की जाती है (दसवीं योजना, 2002-07)।

पर्यावरणीय सुरक्षा

पर्यावरण प्रबंध और सुरक्षा नीति उन महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करती है जो मुख्यतः झीलों और जलाशयों, जलीय गुणवत्ता तथा स्रवण क्षेत्रों में भूमि उपयोग प्रबंध से सम्बन्धित है। अन्य पर्यावरण सम्बन्धित विषय हैं शहरी अपशिष्ट का निपटान व उपचार करना तथा इसे पुनः चक्रवित करना व आबादी के विस्थापन के कारण उत्पन्न सामाजिक आर्थिक समस्याएँ जो भविष्य में शहर के विस्तार के कारण होती हैं। झीलों और जलाशयों के पर्यावरण प्रबंधन अपने सन्निकट के शहरी दबाव के प्रति संवेदनशील हैं। और अधिक पर्यावरणीय विकृति को रोकने के लिए स्रवण-क्षेत्र में भू-उपयोग नियंत्रण उपायों को लागू करना अनिवार्य है ताकि वांछित स्थायीत्व स्तर प्राप्त किया जा सके। शहरी जीवन की गुणवत्ता सुधारने के लिए योजना कार्यान्वयन हेतु गहन प्रयासों की आवश्यकता है। तिवारी (2005) द्वारा वर्णित निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक प्रभावशाली योजना कार्यान्वयन नीति बनाने की आवश्यकता है :

1) प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा करना;

2) सांस्कृतिक धरोहर के क्षेत्रों का संरक्षण करना;

3) भूमि का आशावादी प्रयोग और उपयोग करना;

4) सेवाएँ और आधारभूत सुविधाएँ प्रदान करना; और

5) भूमि की आपूर्ति और आधारभूत विकास के लिए भागीदारी विचारधारा।

हाल ही का विश्व बैंक अध्ययन बताता है कि जंगलों पर समुदायों के अधिकारों से सशक्तिकरण दोनों के लिए निश्चित रूप से लाभदायक परिणाम वाला होगा। अध्ययन के अनुसार एक सामान्य सर्वेक्षण यह दर्शाता है कि वर्तमान में संयुक्त वन प्रबंधन (Joint Forest Management; JFM) के अधीन क्षेत्र में सुधारे गए जंगलों से व्यावसायिक लकड़ी, बाँस और ग़ैर-काष्ठीय उत्पादों से आमदनी 2004 में अनुमानित 22.2 करोड़ अमरीकी डॉलर से बढ़ कर 2020 तक प्रति वर्ष लगभग 2 अरब अमरीकी डॉलर हो जाएगी। इस विस्तार में राज्य संयोजनकर्त्ता के रूप में कार्य करता है क्योंकि राज्य वन विभाग की गतिविधियाँ मुख्य कार्यों जैसे तकनीकी सलाहकार सेवा प्रदान करना, समुदायों और निजी क्षेत्र के बीच भागीदारी को सहज बनाना तथा वन पर्यवेक्षण करने जैसे कार्यों में सीमित है। समुदाय वन संसाधनों के लाभ तो राज्य के साथ बाँटते हैं परन्तु प्रबंधन में उनके अधिकार सीमित हैं। वर्तमान में 27 राज्यों में 85,000 से अधिक ग्राम समितियाँ कार्यरत हैं। यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि भारत में कृषि के बाद वन भूमि का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है जिससे 6,41,130 वर्ग किलोमीटर या कुल भूमि उपयोग में लगभग 22 प्रतिशत वन भूमि शामिल है। भारत में लगभग 27.5 करोड़ गरीब ग्रामीण लोग या कुल आबादी का 27 प्रतिशत लोग अपने अस्तित्व के न्यूनतम एक भाग के लिए और नकदी फसलों के लिए वनों पर निर्भर करते हैं। ऐसी समुदाय-आधारित विचारधाराएँ पूरे विश्व में अर्थात् सूचनाप्रद लोक प्रशासन प्रणाली "पुनःअनुसंधानात्मक सरकार" प्रतिदर्श को आशावादी बनाती है। समुदाय आधारित विचारधाराओं के माध्यम से पर्यावरण सुरक्षा अपने मूल उद्देश्य के साथ असंख्य रोज़गार के अवसर प्रदान करती है जिसे स्थानीय स्व-सरकार की संस्थाओं के माध्यम से अब प्रभावी बनाया जा सकता है।

जैसा कि पहले चर्चा की गई है, पर्यावरण सुरक्षा रोज़गार के अवसर प्रदान करती है जिससे दोहरा उद्देश्य पर्यावरणीय सुरक्षा और महत्त्वपूर्ण सतत् विकास पूरा होता है।

आपदा प्रबंध

आपदा प्रबंध को अभी तक ग़ैर-योजना विषय के रूप में नहीं रखा गया है। फिर भी, वनरोपण और पेय जल आदि जैसी अनेक योजनाएँ चल रही हैं जो आपदा प्रबंध से सम्बन्धित हैं। अतः आपदा वित्त प्रबंध में एक योजना तत्व पहले से ही विद्यमान है। अब मुख्य योजना में आपदा प्रबंध प्रयासों पर अधिक ज़ोर देने का प्रयास होगा। यह आपदाओं द्वारा जीवन क्षति के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था के विध्वंसक प्रभावों को अनुभव करने से उत्पन्न हुआ है। हाल ही में आपदाओं ने बढ़ती उग्रता जैसे उड़ीसा का तूफान, गुजरात का भूकंप, 2001 की बाढ़ और अब आवधिक रूप से पढ़ने वाला सूखा आदि ने भारतीय भूदृश्य को बहुत प्रभावित किया है जिसने विकास को नगण्य कर दिया है। आपदाओं के दीर्घकालीन प्रभावों से राज्य की चिंताएँ बढ़ जाती हैं जिससे आपदा के बाद राज्य काफी समय तक गतिरोध में पड़ जाता है। अनुसंधानकर्त्ताओं का सुझाव है कि आपदाओं की क्षति काफी समय से निर्मित होती हैं। सुभेद्यताओं का परिणाम होती हैं अतः ये मुख्यधारा के विकास का विषय हैं। ये विभिन्न प्रकार की भौतिक और सामाजिक-आर्थिक प्रकृति की होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक अवधि में आपदा क्षतियों को कम करने के लिए विवेकपूर्ण सुभेद्यता में कमी को आरंभ करना होगा। यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया हो सकती है जिसके लिए योजना कोषों के द्वारा सरकार की स्थायी प्रतिबद्धता आवश्यक होगी। फिर भी यह कार्य काफी कठिन है क्योंकि आपदाएँ अनिश्चित/असंगत घटनाएँ होती हैं जिसके लिए संबद्ध बजट आबंटन करना एक कठिन नीति विकल्प है। फिर भी, योजना प्रतिबद्धता अपरिहार्य है क्योंकि सुभेद्यता कमी एक विकासात्मक प्रयास है क्योंकि इसकी मूलतः नियमित विकास सरोकार जैसे, गरीबी में कमी के लिए रोज़गार प्रावधान आदि करना शामिल है जो समुदायों में समुत्थान शक्ति उत्पन्न करती है। अब नया अनुभव यह है कि विकास योजना में आपदा प्रबंध के महत्त्व का अभी तक भूमि उपयोग योजना जैसे प्रावधान में अभाव था जिसमें बाढ़ नियंत्रण या भूकंप सुभेद्यता या भूकंपरोधी मूलभूत रचनाओं की आवश्यकता तथा इनके लिए महत्त्वपूर्ण तकनीकी और कानूनी प्रावधानों की सुरक्षा का अभाव था। संभवतः सुरक्षा संदर्भ ने आपदा प्रबंध की अपेक्षा ऐसे स्थल चयन निर्णयों का मार्ग दर्शन किया। आपदा प्रबंधन की जागरूकता के साथ ऐसे संदर्भ विकास योजना को अधिकाधिक सूचित करते रहेंगे।

18.6 सारांश

प्रतिदर्श परिवर्तन व्यवस्थित हैं। योजना में शीर्ष निम्न से बहुस्तरीय योजना परिवर्तन की तरफ ज़ोर रहेगा। बहुस्तरीय योजना से नीति निर्माण बाधाओं और आर्थिक क्षेत्रों में संसाधन उपयोग की दक्षता वृद्धि की स्थिति में सुधार होने की आशा की जाती है। इससे स्थानीय विकास की आवश्यकताओं के संदर्भ में अधिक रूचि जागृत होने और स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण और कार्यान्वयन में क्रमशः अन्तर क्षेत्रीय संपर्क और समन्वय विकसित होने की आवश्यकता है।

जैसा कि प्रो. दंतवाला कहता है, "प्रत्येक अगले क्रमिक स्तर पर योजना का क्षेत्र और विषयवस्तु संकुचित हो जाती है"। इस तर्क के अनुसार हम यह समझते हैं कि स्थानीय स्तर पर केवल अवशिष्ट विकास कार्य ही बचते हैं। इसका अभिप्राय आलोचना करना नहीं अपितु एक तथ्यात्मक कथन है क्योंकि कार्यों और दायित्वों का हस्तांतरण स्थानीय संसाधन और कार्मिकों की तकनीकी विशेषज्ञता के अनुसार रखना पड़ता है। अतः विकास योजना को संस्थात्मक और क्रियात्मक दोनों होना पड़ता है क्योंकि कार्य हस्तांतरण को सफल बनाने के लिए संस्थात्मक पूर्वापेक्षाओं को पहले सुनिश्चित करना होता है। अतः एक जिला योजना समिति प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इसमें अनेक सदस्य होते हैं।

निम्न स्तरों पर अधिकारों और दायित्वों का प्रत्यायोजन, कानूनों को तर्कसंगत बनाने, के द्वारा नीति सुधार की आवश्यकता की मान्यता में वृद्धि हो रही है। प्रशासनिक प्रक्रियाओं पर स्थानीय प्रशासनिक कार्मिकों का एकाधिकार नियंत्रण कम करने के लिए प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ये प्रक्रियाएँ भ्रष्टाचार के अवसर/उदाहरण उत्पन्न करती हैं तथा पारदर्शी प्रशासन प्रदान करने के लिए लोगों को नागरिक समाज को सशक्तिकरण करने को प्रेरित करती हैं। अतः अच्छे शासन में प्रक्रियात्मक बाधाओं के हटाने पर ज़ोर दिया जाता है जिसका तात्पर्य निवेश बढ़ाने पर ज़ोर देने की अपेक्षा प्रक्रियात्मक सुधार पर ज़ोर है जबकि अब तक निवेश बढ़ाने पर ज़ोर रहता था। योजना आयोग भूमण्डलीकरण और बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था के परिवर्तित व्यापक प्रतिदर्श में नीति प्रभावों के लिए सुझाव देने के द्वारा राज्यों को योजना कार्यान्वयन के विभिन्न पक्षों में अधिक तकनीकी सहायता प्रदान करेगा। योजना आयोग विकास प्रशासन विशेषतः परियोजना निर्माण के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास में सहायता प्रदान करेगा। यह कार्य श्रेष्ठ कार्यान्वयन रिकार्ड से उत्पन्न राज्यों की समुचित अच्छी ऋण योग्यता बढ़ाने तथा विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए अच्छे निवेश प्रस्तावों की रचना हेतु किया जाता है। इन सभी उपायों का एक मात्र उद्देश्य श्रेष्ठ शासन प्रदान करना है।

18.7 मुख्य अवधारणाएँ

विकास योजना (Development Planning) : वृहत! नीति में विकास योजना का स्थिति निर्धारण मुख्य मूल्य/उद्देश्य के अनुसार होता है। उदाहरण के लिए भारत में यह नया उदारीकरण है जो पूरे विश्व में है। इसके अनुसार राज्य का पीछे हटना, वित्तीय खर्च का नियंत्रण तथा स्वयंसेवी और निजी व्यावसायिक क्षेत्र से सहयोजन आज भारत में विकास योजना की जानकारी देते हैं।

लोक वित्त (Public Finance) : लोक वित्त अर्थशास्त्र की एक शाखा है जो सरकारी व्यय का अध्ययन करती है। इसमें लोक (सार्वजनिक) व्यय, व्यय वृद्धि के कारण तथा अर्थव्यवस्था का क्षेत्र आदि के मुकाबले सार्वजनिक राजस्व, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कराधान का क्षेत्र व स्रोत, ऋण, अनुदान ऋण आदि दोनों का अध्ययन शामिल होता है। सार्वजनिक वित्त का महत्त्व राष्ट्रपति रुजवेल्ट के अधीन अमेरिका में पश्चवर्ती ग्रेट डिप्रैसन न्यू डील में काफी बढ़ गया था। यह विवादित है कि अमेरिका परिवर्तन के लिए समाजवादी नियम की तरफ मुड़ गया था।

अच्छा शासन (Good Governance) : दसवीं योजना के दस्तावेज में वर्णित व्याख्या के अनुसार अच्छे शासन में शामिल है वैध राजनीतिक अधिकार उपयोग करना तथा उन नीतियों और कार्यक्रमों का निर्माण व कार्यान्वयन करना जो न्यायसंगत, पारदर्शी, निष्पक्ष, सामाजिक रूप से संवेदनशील, भागीदार और सर्वाधिक लोगों के प्रति उत्तरदायी हों। इसके अतिरिक्त विभिन्न संदर्भों में कुछ कार्यक्रमों में कुछ विशिष्ट आवश्यकताएँ हो सकती हैं जो अच्छा शासन प्रदान करने के लिए आवश्यक होंगी।

योजना एवं ग़ैर-योजना व्यय (Plan and Non-Plan Expenditure) : वैसे योजना और ग़ैर-योजना खर्च के मध्य स्पष्ट विभाजन करने की व्यवहार में आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, एक पुल निर्माण में एक वर्ष में किया गया व्यय योजना व्यय में डाला जाएगा और उसके बाद ग़ैर-योजना (पुल की देखभाल/रखरखाव) में जो किसी तरह भी यह विकास के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विद्वानों ने सुझाव दिया है कि इस वर्गीकरण को हटा दिया जाए। फिर भी यह समझना पर्याप्त होगा कि योजना और ग़ैर-योजना व्यय दोनों ही विकास में योगदान करते हैं। किसी एक पर ज़ोर न देना उपयुक्त नहीं होगा।

18.8 संदर्भ व अन्य लेख

अय्यर, अंकलेश्वर एस., दिसम्बर 16, 2005, "ग्लोबलाइजिंग रूरल इंडिया" *संडे टाइम्स ऑफ इंडिया*।

अय्यर, अंकलेश्वर एस., जनवरी 22, 2006, "लिवलीहूड्सः दी मेन इन दी स्ट्रीट" *संडे टाइम्स ऑफ इंडिया*।

धींगड़ा, आई. सी., 2005, *दी इंडियन इकानॉमी : इनवायरनमेंट एंड पॉलिसी,* सुल्तान चंद एंड संस।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07।

जैन, एल, सी., 2004-05, "वाय एंड एल्टरनेट इकानॉमिक सर्वे?", रिव्यू आर्टिकल, *एल्टरनेट इकानॉमिक सर्वे,* 2004-05, *डिसइक्वलाजिंग ग्रोथ,* दानिश बुक्स।

काबरा, कमल, नयन, 1998, *डेवलपमेंट प्लानिंग,* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

लोगन, जे., एवं एच. मोलोटेक, *अर्बन फोरचून्स,* 1987, *दी पॉलिटिकल इकानॉमी ऑफ प्लेस,* बर्कले, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस।

नैयर, प्रभाकरण, के., 2006, "प्रोडूस मोर फूडग्रेन", *दी टाइम्स ऑफ इंडिया,* फरवरी, 9।

राकेश, हुजा, बी., येराम राजू, (संपा.), 1993, *डिसेंट्रलाइजड प्लानिंग इन मल्टी-लेवल फ्रेमवर्क : रिलेवन्स, मैथडोलॉजिज एंड प्रोसपेक्टस,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

रॉय, एम्टादीप, 2005, ल्यूकर डाउन द डस्टी रोड्स", बैन्कर्स कांफ्रेंस, 11-12 नवम्बर रिपोर्टेड इन *दी टाइम्स ऑफ इंडिया*।

सिंह, ओ. एस., 2005, "रीचिंग द आउटरीचड", बैन्कर्स कांफ्रेंस, 11-12 नवम्बर रिपोर्टेड इन *दी टाइम्स ऑफ इंडिया*।

सिंह, एस. पी., 2005, "एग्रीकल्चर", *एल्टरनेट इकानॉमिक सर्वे,* 2004-05, *डिसइक्वलाजिंग ग्रोथ,* दानिश बुक्स।

सुंदरम, के. वी., 2003, डिसेंट्रलाइज्ड मल्टीलेवल प्लानिंगः प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिसेज़ (एशियन एण्ड अफ्रीकन एक्सपीरियेंसेज़), कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

तिवारी, डी. पी., 2005, "चैलेंज इन अर्बन प्लानिंग फॉर लोकल बोडिज इन इंडिया", http://www.GISdevelopment.net पर ऑन लाइन पढ़ें।

वर्गीस, चेरियन, के., 2005, "बैंडिंग बैकंवर्डस इन लैंडिंग मोड", बैन्कर्स कांफ्रेंस, 11-12 नवम्बर रिर्पोटेड इन *दी टाइम्स ऑफ इंडिया*।

वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट संख्या 34481, "अनलोकिंग अपार्चनुनिटिज फॉर फारेस्ट-डिपेंडेंट पीपुल्स इन इंडिया (इन टू वाल्यूम्स) वाल्यूम I : मैन रिपोर्ट दिसम्बर 28, 2005", एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डेवलपमेंट सेक्टर यूनिट, साउथ एशिया रिजीन।

18.9 अभ्यास

1) विकास योजना की तार्किकता की व्याख्या कीजिए।

2) विकास योजना में आवश्यकताओं की चर्चा कीजिए।

इकाई 19 लघु स्तरीय योजनाएँ : निर्माण और कार्यान्वयन

रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 वृहद् स्तरीय आयोजना : सीमाएँ

19.3 लघु स्तरीय आयोजना के मुद्दे

19.4 लघु स्तरीय आयोजना की सीमाएँ

19.5 पंचवर्षीय योजनाओं में लघु स्तरीय आयोजना

19.6 दसवीं योजना की प्राथमिकताएँ

19.7 सारांश

19.8 मुख्य अवधारणाएँ

19.9 संदर्भ व अन्य लेख

19.10 अभ्यास

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- लघु अथवा सूक्ष्म स्तरीय आयोजना (Micro level planning) के महत्त्व को समझ सकेंगे;
- लघु स्तरीय आयोजना के मुद्दों की पहचान कर सकेंगे;
- लघु स्तरीय आयोजना की सीमाओं की विवेचना कर पाएँगे; और
- दसवीं योजना की प्राथमिकताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

इस समय, विकास योजना के क्षेत्र में, ज़ोर "ऊपर से नीचे की ओर" वाले दृष्टिकोण की जगह "नीचे से ऊपर की ओर" वाले दृष्टिकोण पर दिया जा रहा है। और, यह प्रवृत्ति केवल भारत अथवा तीसरी दुनिया तक ही सीमित नहीं है। यह एक विश्वव्यापी प्रवृत्ति है, और विकसित देशों में नगर प्रशासन के संदर्भ में ऐसा विशेषकर है। "नीचे से ऊपर की ओर" वाला रूझान पहले के रूझानों की अपेक्षा क्रांतिकारी है, जिसका आधार केन्द्रीय आयोजना है, चाहे राज्य तंत्र की प्रकृति कुछ भी हो -- वृहद चाहे *नियंत्रित* (*Controlled*) अथवा *उदारवादी* (*Liberal*) अथवा आयोजना की प्रकृति, *सांकेतिक* (*Indicative*) अथवा *नियंत्रित* हो। "नीचे से ऊपर की ओर" वाली आयोजना को लघु आयोजना कहा जाता है, जो उस स्तर का संकेतक है जिस पर आयोजना का प्रयास किया जाना है, अर्थात् ज़मीनी स्तर के उतना ही निकट है जितना आर्थिक दृष्टि से सक्षम और प्रशासनिक दृष्टि से औचित्यपूर्ण है।

राज्य तंत्र विशेषकर कल्याणकारी राज्य वाले देशों में काफी विकसित हो गया है, जहाँ राज्य को व्यक्तियों के जीवन के लगभग सभी पहलुओं से सम्बन्धित, उनके जन्म से मृत्यु तक, काफी ज़िम्मेदारियाँ प्रदान की गई हैं। अधिकांश गतिविधियाँ आर्थिक दृष्टि से अव्यवहार्य साबित हुई हैं। अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं और राज्य का तंत्र इतना बढ़ गया है कि उसका प्रबंधन आसान नहीं है। अब तक नव उदारवादी प्रतिमान के अंतर्गत राज्य के लिए आरक्षित अनेक कार्य निजी क्षेत्र और प्रासंगिक ग़ैर-सरकारी संगठनों को सौंपे जाने हैं। इस तरह के प्रयास को फलीभूत करने में, राज्य को उत्प्रेरक का कार्य करना है। जैसा कि गलत समझा जाता है, आयोजना अप्रासंगिक नहीं होगी, बल्कि उसे नई उन्मुखता मिलेगी और उसमें व्यापक दीर्घकालीन मुद्दों पर विचार किया जाएगा और योजना के कार्यान्वयन से सम्बन्धित अल्पकालीन सरोकारों और मुद्दों को स्थानीय स्तरों को सौंपा जाएगा।

लघु आयोजना एक वैकल्पिक दृष्टिकोण है, जिससे योजना के कार्यान्वयन को स्थानीय स्तर पर सक्षमता मिलेगी और उसकी परिणति प्रत्याशित तौर पर योजना के बेहतर निष्पादन में होगी। और, ऐसा विशेषकर मानव विकास सूचकांक के सम्बन्ध में होगा, जिसमें गरीबी उन्मूलन और स्वास्थ्य सेवा, शिशु देखभाल और पोषण की स्थिति आदि को शामिल किया जाएगा। इसके चलते अनेक केन्द्रीय संगठन और उनकी क्षेत्रीय शाखाएँ अनावश्यक हो जाएँगी क्योंकि स्थानीय आयोजना और योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन की मदद से कहीं कम लागत पर बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकेगा। "ऊपर से नीचे की ओर" वाली आयोजना निस्संदेह महँगी साबित हुई है। इस इकाई में हम वृहद् स्तरीय आयोजना, लघु स्तरीय आयोजना के महत्त्व और लघु स्तरीय आयोजना के मुद्दों और सीमाओं पर चर्चा करेंगे।

19.2 वृहद् स्तरीय आयोजना : सीमाएँ

वृहद् और व्यष्टि (Macro) राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तरीय आयोजना क्षेत्रवार (Sector-wise) और औसतों के संदर्भ में होती है। इसमें रोज़गार, आवास, शिक्षा, सेवाओं आदि से सम्बन्धित आँकड़ों को सकल स्तर पर एकत्रित/विचारित किया जाता है। विविध क्षेत्रों/लक्ष्य जनसंख्या के आपेक्षिक सरोकारों के खंडीकरण (Factoring) को ध्यान में रखते हुए, आवश्यक विविधीकरण को आयोजना और प्रशासन के, छोटे और उससे छोटे के क्रम से, स्तरों पर छोड़ दिया जाता है। वृहद् स्तरीय आयोजना में संसाधन विकास पर व्यापक संदर्भ में ध्यान केन्द्रित किया जाता है, अर्थात् उपेक्षित लक्ष्य विकास के अनुसार निवेशों के संदर्भ में, और आवश्यक विवरणीकरण को सेवा डिलीवरी और वितरण के संदर्भ में वहाँ स्थानीय आयोजना और प्रशासन पर छोड़ दिया जाता है जहाँ विशेषज्ञता और जानकारी का अभाव होता है। इसके चलते, स्थानीय स्तरों पर निर्णयों में समय-समय पर अनेक बदलावों की ज़रूरत हुई है क्योंकि पहले तो योजनाएँ ही स्थानीय ज़रूरतों और संसाधन क्षमता के अनुसार नहीं थीं। मसलन, योजनागत संसाधनों को राज्यों के बीच गाडगिल फार्मूला में निर्दिष्ट व्यापक मानकों के आधार पर वितरित किया जाता है। इन व्यापक मानकों में लक्ष्य जनसंख्या की क्षेत्रीय विशिष्टताओं अथवा विशिष्ट ज़रूरतों को शामिल करने की गुंजाइश नहीं होती। मसलन, तीन सौ रुपयों से कम आय वाले परिवारों के लिए बने कमज़ोर वर्ग आवास कार्यक्रम में लाभार्थियों की पहचान के लिए सीधे डेढ़ सौ रुपयों के औसत को लिया जा सकता है, जो गलत होगा (*चंद्रशेखर*, 1986)।

ग्रामीण विकास के मामले में, मंत्रालयों/विभागों में कार्यपालिका के अतिशय कोष्ठीकरण अथवा विभाजन से यह सुनिश्चित हो गया है कि आयोजना तो संकीर्ण क्षेत्रीय कार्यनीतियों के अनुरूप ही चलेगी और सामाजिक क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिए नितांत महत्त्वपूर्ण पारस्परिक सहक्रियाएँ ज़मीनी स्तर पर निर्मित नहीं होंगी। इसके परिणामस्वरूप होने वाले दुहराव और प्रक्रमी रुकावटों ने लाभों को लाभार्थियों तक पहुँचने से रोक दिया है। नौवीं योजना के मध्यावधि मूल्यांकन से यह बात सामने आई है कि जनजातीय विकास, जल-विभाजक विकास, कृषि, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण आदि जैसे

विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण विकास हेतु केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को प्रति वर्ष लगभग 400 अरब रूपए दिए जाते हैं। किन्तु, राज्य द्वारा संचालित विकास योजनाओं के माध्यम से, लाभ लक्षित लाभार्थियों तक पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँचते हैं। इसका मुख्य कारण स्थानीय प्रशासन का लचर शासन है जो दिशा-निर्देशों को कार्यवाही में नहीं बदल पाया है और जो व्यवहार के स्तर पर ग़ैर-ज़िम्मेदार, भ्रष्ट और निष्क्रिय रहा है। सेवा प्रदान करने के मामले में प्रशासनिक अधिकारियों को अत्यधिक विवेकाधिकार दे दिए गए हैं और वे अपने नियमित कार्यों के लिए भी एकाधिकार कीमत वसूलते हैं, क्योंकि जबावदेही के तंत्र या तो हैं ही नहीं या फिर इतने कमज़ोर हैं कि उन्हें लागू ही नहीं किया जा सकता (दसवीं योजना, 2002-2007)।

लचर कार्यान्वयन में ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में असंतुलित क्षेत्रीय विकास और सामान्य/समूचे उप-इष्टतम (sub-optional) योजना निष्पादन का कारण स्पष्ट हो जाता है। जैसा कि दसवीं योजना में कहा गया है वृहद "भारत में, अनेक क्षेत्र, अथवा क्षेत्रों के भीतर राज्य, अथवा राज्यों के भीतर जिले भी हैं जहाँ सामाजिक संकेतकों के संदर्भ में विकासगत परिणामों का उपलब्ध संसाधनों और लोगों की अंतर्निहित क्षमता के साथ मेल नहीं बैठता। जो राज्य खनिज की दृष्टि से समृद्ध हैं वे आवश्यक तौर पर औद्योगिक दृष्टि से विकसित नहीं हैं, और जहाँ अच्छी खेती-योग्य ज़मीनें हैं और सुनिश्चित सिंचाई सुविधा हैं, वे राज्य अक्सर कृषि विकास के मामले में पिछड़ रहे हैं। क्रमशः बिहार और झारखण्ड इस स्थिति के उदाहरण हैं।

प्रशासनिक सीमाओं को देखते हुए यह उचित समझा गया है कि बेहतर परिणामों के लिए वृहद् क्षेत्र-विशिष्ट आयोजना को छोड़ लघु सामान्यीकृत स्थानिक योजना को अपनाया जाए।

यही नहीं, राजनीतिक अस्थिरता का यह मतलब रहा है कि वित्त आयोग और सरकार का, मसलन 13वीं लोकसभा का कार्यकाल साथ-साथ समाप्त नहीं होता। इसके चलते, योजना आयोग, वित्त आयोग और सरकार का साथ-साथ काम करना कठिन हो जाता है। गठबंधन की राजनीति की सीमाओं को देखते हुए, स्थानीय प्रशासन में निरंतरता और स्थिरता वाली एक वैकल्पिक व्यवस्था पर विचार किया जा रहा है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्थिरता के एक वैकल्पिक तंत्र के प्रावधान के लिए स्थानीय स्तर की विकास योजना प्रक्रिया पर ज़ोर क्यों दिया गया है (दसवीं योजना, 2002-2007)।

19.3 लघु स्तरीय आयोजना के मुद्दे

क्षेत्र का चयन

लघु स्तरीय आयोजना शब्द का मतलब तब तक अस्पष्ट ही रहता है जब तक आयोजना के वास्तविक स्तर को स्पष्ट नहीं किया जाता। स्तरों के सीमांकन के विभिन्न मानदंड हो सकते हैं। वी.नाथ के अनुसार, मानदण्ड चाहे जो भी अपनाया जाए, सरोकार तो *समरूपता (Hom)* और अंतर सम्बन्ध और बाह्य विषमता के सिद्धान्त पर निर्मित भूगोल अथवा विनिमय सम्बन्धों की समीपता से होता है। दूसरे शब्दों में, क्षेत्र का आधार "किसी सम्बन्ध में" सम्बन्धित परिघटना का वितरण होना चाहिए। तदनुसार, जलवायु से सम्बन्धित भौगोलिक संरचना, भू-आकृति, जलवायु, जलविज्ञान, मिट्टी, वनस्पति जैसी प्राकृतिक परिघटनाओं के वितरण से सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र हो सकते हैं; अथवा कृषि भूमि उपयोग, जनसंख्या घनत्व और व्यावसायिक स्वरूपों जैसी प्राकृतिक परिघटनाओं के वितरण से सम्बन्धित भौगोलिक क्षेत्र हो सकते हैं। इसी तर्क के अनुसार, समाज विज्ञानी और मानव विज्ञानी सांस्कृतिक मानदंडों का प्रयोग करते हैं, जिसके अनुसार लोग साझा मूल्यों और व्यवहारों के आधार पर समुदाय का निर्माण करते हैं और वे अबूझ विषमरूपता वाला असम्बन्धित समूह नहीं होते। इस तरह, औद्योगिक क्षेत्र अथवा आर्थिक क्षेत्र भी हो सकते हैं, जिन्हें लॉश ने "एक पण्य वस्तु का विपणन क्षेत्र और इस प्रकार

के विपणन क्षेत्रों की व्यवस्था के रूप में एक आर्थिक क्षेत्र" बताया है। प्रत्येक आधार विकास नीति में सीमांकन/उद्देश्य के लिए किसी तर्कपूर्ण मानदंड का काम करता है। इसके अतिरिक्त, यह भी वांछनीय है कि क्षेत्र इतना छोटा हो कि लोगों के काफी निकट हो और किसी समरूप मानदंड पर इतना बड़ा हो कि आयोजना के लिए एक लाभदायी आर्थिक इकाई बन सके। सारांश यह है कि क्षेत्र योजनाकार के लिए एक पहचान योग्य इकाई होनी चाहिए, ऐसा विखंडित क्षेत्र नहीं जिसे किसी भी तर्कपूर्ण मानदंड पर नियोजित न किया जा सके। ई एस सी ए पी (ESCAP) के अनुसार, "जिला" को स्थानीय स्तर की आयोजना के लिए एक लाभदायक स्थानिक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु, एकरूपता का अभाव तो भारतीय प्रशासन का विशिष्ट गुण है और पाकिस्तान और इंडोनेशिया जैसे देशों के प्रशासन का भी, जहाँ कुछ जिले तो हास्यास्पद स्तर तक छोटे हैं और कुछ बेहद बड़े। ऐसे क्षेत्रों के लिए आयोजना के कुछ विषयों के सम्बन्ध में प्रखण्ड (ब्लॉक) जैसे उप जिला स्तरों को उपयुक्त माना जाता है, जैसे भारत में। किन्तु प्रखण्ड स्तरीय आयोजना का अनुभव अत्यंत दुखद रहा है। इस सम्बन्ध में, असफलता का मुख्य कारण, नीति नियोजन और तकनीकी जानकारी दोनों ही अर्थों में, प्रखण्ड स्तर पर पर्याप्त विशेषज्ञता का अभाव था। जहाँ विकसित देशों में बाजार तंत्र के मुक्त संचालन ने प्रभावी स्थानीय शासनिक अर्थव्यवस्थाओं के लिए पर्याप्त संस्थागत अवसंरचना उपलब्ध कराई है, वहीं विकासशील देशों में इस प्रकार का तंत्र कमज़ोर अथवा अनुपस्थित है, जिसके चलते स्थानीय स्तर पर योजना बनाना कुछ कठिन हो जाता है। स्पष्ट कहें तो, बाजार दूर-दूर हैं, भण्डारण की सुविधाएँ अपर्याप्त हैं, स्थानीय उद्योग कम हैं, प्रशासनिक तथा अन्य संस्थाओं में ज्ञान का अभाव है और इसलिए जानकारी भी सीमित है (सुंदरम, 2003)।

वी. नाथ (1984) के अनुसार, नीति की बनावट में नीति के स्थानिक विस्तार से सम्बन्धित लोच होनी चाहिए, जैसे जल संसाधनों के विकास में नदी घाटी प्रणाली एक सही स्थानिक इकाई हो सकती है, महानगरीय आयोजना के लिए ज़रूरी है कि शहर के महानगरीय क्षेत्र को इकाई मानकर योजना बनाई जाए। इसी प्रकार, विद्युत संसाधन विकास और परिवहन के विकास के लिए उपयुक्त हवाई विस्तार को नीति का अधिकार क्षेत्र होना चाहिए। और यह भी स्पष्ट करें तो, वन संसाधनों के दोहन, चराई, बागवानी जैसी आर्थिक गतिविधियों, व्यावसायिक स्वरूपों, संसाधन उपयोग के सामान्य स्वरूपों, और शुष्क स्थलाकृति जैसी सामान्य विशेषताओं के अर्थ में उत्तर प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर के हिमालय क्षेत्र एक भौगोलिक क्षेत्र का निर्माण करते हैं। इसलिए, क्षेत्र की भौगोलिक समरूपता के आधार पर विकास योजनाएँ बनाना और लागू करना अपेक्षाकृत आसान होगा। वी. नाथ के अनुसार, ऐसे क्षेत्रों का उपयोग आयोजना में प्रशासनिक इकाइयों के रूप में होना चाहिए।

भारत में, शिक्षा के लिए संसाधन का आबंटन कुछ कम है, जिससे व्यवस्था की कमजोरियाँ और भी बढ़ती हैं। संसाधनों के अभाव, अलग कर्मचारी दल, शीर्ष पर विशेषज्ञों के जमाव, प्रशासन की शीर्ष के भारीपन की ओर उन्मुखता के कारण प्रशासन कमोबेश अक्षम होता है। स्थानीय स्तर पर विकास आयोजना के लिए ज़रूरी पर्याप्त तकनीकी विशेषज्ञता का अभाव एक बड़ी रूकावट है। आयोजना के लिए पर्याप्त डाटाबेस का भी अभाव है क्योंकि राज्य स्तर पर आयोजना तंत्र वृहद राज्य योजना आयोग और राज्य योजना परिषदें वृहद कुछ कमज़ोर हैं। इसलिए, भारत में आम सहमति स्थानीय आयोजना के स्तर के रूप में जिले के पक्ष में उभरी है (सुंदरम, 2003)।

स्तर के चुनाव की दुविधा का निराकरण/संभवतः समाधान करने हेतु तीन स्तर के एक बहुस्तरीय योजनागत ढाँचे का प्रयास 73वें और 74वें संविधान संशोधनों में किया गया है। 74वें संविधान संशोधन के अनुसार, जिला योजना समितियों/महानगर योजना समितियों (District Planning Committees/ Mahanagar Planning Committees; DPC/MPC) को राज्य जिला पंचायत/प्रादेशिक और नगर योजना अधिनियमों के अंतर्गत गठित किए जाने की ज़रूरत है। राज्यों में एक तीन-स्तरीय पंचायत/नगरपालिका स्तरीय, जिला तथा महानगर स्तरीय, और राज्य स्तरीय वृहद योजना ढाँचे की

संकल्पना की गई है। इस ढाँचे के अधीन, पंचायतें/नगरपालिकाएँ अपने क्षेत्रों के लिए योजनाएँ तैयार करेंगी और उन्हें प्रारूपीय जिला विकास योजनाओं के रूप में जिला स्तर पर सुदृढ़ किया जाएगा। इसकी विस्तृत प्रक्रिया इस प्रकार है :

73वें संविधान संशोधन के बाद, विभिन्न स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं का गठन और कार्य इस प्रकार हैं:

ग्राम स्तर पर: ग्राम डाटा वस्तुतालिका (Village Data Inventory; VDI) तैयार करना, ग्राम सभा की बैठकें आयोजित करना, गाँव की ज़रूरतों की सूची बनाना, उपलब्ध संसाधनों के आधार पर इन ज़रूरतों की प्राथमिकता तय करना, और पंचायत समिति (प्रखण्ड स्तर के निर्वाचित निकाय) को प्रेषित करने हेतु एक ग्राम योजना तैयार करना।

प्रखण्ड स्तर पर: प्रखण्ड (ब्लॉक) डाटा वस्तुतालिका (Block Data Inventory; BDI) तैयार करना, समस्त ग्राम योजनाओं का समाकलन करना, और जिला पंचायत को प्रेषित करने हेतु प्रखण्ड स्तर की योजना तैयार करना।

जिला स्तर पर: समस्त प्रखण्ड स्तरीय योजनाओं का समाकलन करना, मद, वर्ष और लागत के हिसाब से (राज्य और संघीय सरकारों के क्षेत्रीय कार्यक्रमों और ग्राम विकास कार्यक्रमों के साथ उनकी सम्बद्धता के अनुसार उन्हें अलग-अलग करना, विभिन्न स्थानीय शासनिक विभागों को क्षेत्र-वार गतिविधियाँ आबंटित करना, और अंततः परिप्रेक्ष्य योजना तथा वार्षिक कार्य योजना दोनों के लिए स्वीकृति तथा अंतिम रूप देने हेतु जिला योजना समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए ज़िला योजना को तैयार करना (प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली, 2005)।

महानगरीय विकास योजना को महानगर योजना समितियों द्वारा तैयार किया जाएगा। उसके बाद समस्त जिला और महानगर विकास योजनाओं को मिलाकर राज्य स्तर पर एक योजना का रूप दिया जाएगा।

योजनागत विषयों का कार्यात्मक सीमांकन

उपयुक्तता/व्यावहारिकता के अनुसार, मुद्दों के संदर्भ में, स्तरों के बीच कार्यात्मक सीमांकन होगा। भारतीय संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में स्थानीय निकायों को प्रदत्त कार्यों को सूचीबद्ध किया गया है। संविधान की बारहवीं अनुसूची (74वें संविधान संशोधन) में नगरपालिकाओं के 18 कार्य सूचीबद्ध किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं: (1) शहरी योजना, जिसमें नगर योजना शामिल हैं; (2) भूमि उपयोग का विनियमन तथा भवनों का निर्माण; और (3) आर्थिक और सामाजिक विकास हेतु आयोजना। इस सम्बन्ध में, राज्य सरकारें स्थानीय निकायों को कार्य वितरित करने के मामले में अधिक सुस्पष्ट और निश्चित हो सकती हैं। कार्य वितरित करने के मामले में स्पष्टता न होने के कारण, राज्य वित्त निगम एक स्तर पर वित्तीय ज़रूरतों का आकलन करने में असमर्थ होगी और पर्याप्त संसाधन आबंटित नहीं कर पाएगी। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 74वें संविधान संशोधन अधिनियम (Constitutional Amendment Act; CAA 74) में संवैधानिक ढाँचे के भीतर यू एल बी की भूमिका को स्वीकार किया गया है और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने के लिए राज्य वित्तीय शक्तियाँ प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में, स्थानिक, आर्थिक और सामाजिक विकास की योजनाओं की दृढ़ता और तैयारी हेतु जिला योजना समितियों और महानगर योजना समितियों के, और तीन लाख से अधिक आबादी वाली नगरपालिकाओं में वार्ड समितियों के गठन का भी प्रावधान किया गया है। इस प्रकार, ज़ोर अब "ऊपर से नीचे" वाले दृष्टिकोण से हटकर "नीचे से ऊपर" वाले दृष्टिकोण पर आ गया है। इसलिए, कार्यात्मक सीमांकन में मुख्य मुद्दा होगा स्तरों के बीच कार्यों को एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड न होने देना और अधिकतम प्रभाव हेतु किसी कार्य के लिए सही स्तर का चयन करना।

शहरी स्थानीय निकायों के समक्ष चुनौतियों को देखते हुए, योजनाकारों को स्वयं को एक नई भूमिका और अधिक व्यापक ज़िम्मेदारियों के लिए तैयार करना होता है। नगर समाज और राजनीतिक-आर्थिक ढाँचे के बीच एक सेतु के रूप में, योजनाकारों को बदलाव के उत्प्रेरकों की भूमिका निभानी होती है। इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नगर समाज के साथ इच्छित भागीदारी बनाने हेतु प्रबंधकीय क्षमता और योजना कार्यान्वयन हेतु आवश्यक तकनीकी क्षमता से युक्त कार्मिकों की नियुक्ति द्वारा समुचित प्रशासनिक सामंजस्य की आवश्यकता होगी। इसके लिए, मानवशक्ति आयोजना और प्रशिक्षण की ज़रूरत होगी। तकनीकी विशेषज्ञता पर ज़ोर देने के लिए भर्ती नीति में सुधार की भी आवश्यकता होगी।

उन्मुखता अथवा अभिविन्यास का प्रश्न

लघु स्तरीय आयोजना में केन्द्रीय विषयवस्तु क्या होनी चाहिए? स्पष्ट है कि बहुत सारे विषय हैं जिनमें से चयन करना होता है, जिसमें लघु स्तरीय आयोजना का वैचारिक फोकस स्पष्ट होता है। "पर्यावरण केन्द्रित", "रोज़गार केन्द्रित" और "उत्पादकता केन्द्रित" के बीच उन्मुखताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उद्देश्य सुसंगत हो सकते हैं अथवा उनमें स्पष्ट विकल्प मिल सकते हैं, जो एक-दूसरे के विपरीत हो सकते हैं और प्रत्येक आवश्यकता की अनिवार्यता को देखते हुए यह कठिन हो सकता है। अंततः चयन तो सत्ताधारी पार्टी के मूल्य-उन्मूलन अथवा राजनीतिक अनिवार्यताओं का मामला होगा, जैसे आंतरिक तथा बाहरी स्रोतों की माँगों, तात्कालिक आवश्यकताओं आदि के संदर्भ में दबाव और मुखरता। मूल्यों को तथ्यों से युक्त होना चाहिए। स्थिति की आवश्यकताओं को धारण करने के मामले में एक अधिक लचीला दृष्टिकोण तो वैचारिक नजरिये से अधिक उपयुक्त होगा। परिणामस्वरूप, पर्यावरण एक अपेक्षाकृत उपेक्षित क्षेत्र रहा है। तुलनात्मक रूप में, अब प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग के संदर्भ में हितों को बेहतर ढंग से मुखरित किया जा रहा है, किन्तु यह तभी हुआ है जब लूटमार संकट के स्तर तक पहुँच गई।

बहुस्तरीय आयोजना तो पर्यावरणीय सुरक्षा के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि प्राकृतिक, संसाधनों में "बाध्यताएँ" हैं जो राज्य की सीमाओं को भी लांघ जाती हैं। मसलन, एक राज्य का प्रदूषण दूसरे राज्य की कृषि उत्पादकता को प्रभावित करता है। इसलिए, विकास के लिए सभी स्तरों पर सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता होती है। विकास योजना हेतु "क्षेत्र के चयन" के मुद्दे का उल्लेख इस इकाई में पहले ही किया जा चुका है। विशेषकर पर्यावरण सुरक्षा नीति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, क्षेत्र पर ज़ोर फोकस में है। राज्य यदि वृहद् स्तर पर संसाधन का अंधाधुंध उपयोग जारी रखता है, तो जिला स्तर पर लघु आयोजना का कोई असर नहीं होगा। इसलिए, इस सम्बन्ध में सफल प्रयास हेतु एक अंतःस्तरीय भागीदारी व्यवस्था ज़रूरी है जिसमें प्रदेशों, राज्यों, जिलों, प्रखण्डों आदि को शामिल किया जाए। यहाँ ज़ोर एक एकीकृत दृष्टिकोण पर है जिसमें पर्यावरण, मानव पूँजी निर्माण तथा औद्योगिक विकास और कृषि विकास सब मिलकर आयोजना प्रक्रिया को रूप देते हैं।

प्रक्रियागत आवश्यकताएँ

उपमहाद्वीपीय देशों में किए गए केस अध्ययनों के आधार पर, के. वी. सुंदरम (2003) ने स्थानीय स्तर की एकीकृत आयोजना की बुनियादी आवश्यकताएँ इस प्रकार बताई हैं :

"योजनागत दृष्टिकोण को एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र पर केन्द्रित होना चाहिए जहाँ आवश्यक अंतरक्षेत्रीय सम्बन्धों को टटोला जा सके। "क्षेत्रीय विकास" के दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए।"

योजनागत प्रयासों को क्षेत्र की प्रशासनिक क्षमता और संसाधनगत अभावों से सम्बन्धित होना चाहिए, अर्थात् इसे उसी तक सीमित रहना चाहिए जो संभव है। अपनाई गई आयोजना पद्धति लचीली और बदलाव से सामंजस्य करने वाली होनी चाहिए। यह क्षेत्र विशेष के अनुसार होनी चाहिए क्योंकि भिन्न-

भिन्न क्षेत्रों में संसाधनगत क्षमता और आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होंगी। केस अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में उद्देश्यों की पूर्ति में मिली असफलता का मुख्य कारण एक ही तरह के अनुप्रयोग की पद्धति रही है।

तदनुसार, स्थानीय प्रशासकों के पास आवश्यकताओं के अनुसार संसाधनों के पुनर्विनियोजन/पुनराबंटन के लिए बेहतर शक्ति होनी चाहिए, और इसके लिए ज़रूरी मात्रा में वित्तीय हस्तांतरण उपलब्ध कराना होगा।

तकनीकी स्तर पर, निम्नलिखित क्षेत्रों में क्रमबद्ध प्रयास की ज़रूरत होगी;

क) संसाधन वस्तुतालिका और डाटा संग्रह, भावी क्षमताओं और सीमाओं, और विकास की वर्तमान स्थिति को प्रकट करना;

ख) क्षेत्र विशेष की प्राथमिकताओं की पहचान और उसके अनुसार कार्यक्रमों का चुनाव।

ग) विशेष परियोजनाओं के कवरेज (स्थानिक आयाम) और समय सीमा (कालिक आयाम) सम्बन्धी निर्णयों को एक एकीकृत ढाँचे का और एक परिप्रेक्ष्य योजना का हिस्सा होना चाहिए और एक विशिष्ट उद्देश्यों/लक्ष्यों के संदर्भ में रूपांतरित क्षेत्र के लिए दीर्घकालीन संकल्पना के संदर्भ में होना चाहिए।

घ) मानव पूँजी की क्षमताओं को बढ़ाने के साधन स्थापित करने और मौजूदा मानव संसाधनों के अधिकतम उपयोग पर ज़ोर।

ङ) व्यय किए गए संसाधनों का निरंतर आकलन और लेखा परीक्षा और उन्हें बढ़ाने के लिए उपलब्ध नवीन समाधान।

तकनीकी आवश्यकताएँ तो तकनीकी योजना निकाय/विशेषज्ञता की पूर्वधारणा लेकर चलती हैं, जो निर्दिष्ट प्रयास के लिए अनिवार्य पूर्व आवश्यकता होगी। इसके लिए, मानव शक्ति आयोजना को प्रयास की आवश्यकता होगी जिसमें तकनीकी संस्थानों के माध्यम से दीर्घकालीन शिक्षा और तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए आवश्यकता-आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा स्थानीय स्तर पर क्षमता के विकास की संकल्पना होती है।

कृषि, उद्योग और सेवाओं के तीन क्षेत्रकों में विकास को साथ-साथ आवश्यक एकीकरण के साथ चलना होता है। अभी तक, एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme; IRDP) जैसे कार्यक्रम छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में चलाए जाने के कारण सही ढंग से चल नहीं पाए हैं।

वित्तीय संकोचों को एक अनिवार्यता के तौर पर समाप्त करना होगा। स्थानीय वित्त पोषण की सीमाओं अर्थात् राज्य सरकारों से मिलने वाले अनुदानों की अपर्याप्तता के चलते, संसाधनों को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने के लिए कुछ साधन अपनाने होंगे, जैसे करों की चोरी रोकना, बकाये की बेहतर वसूली, और विस्तृत सरकारी तंत्र पर ग़ैर-योजनागत खर्च को कम करना, जिसे भारत में भारी मात्रा में व्याप्त बेरोज़गारी को रोककर नियंत्रित किया जा सकता है।

विभिन्न क्षेत्रकों के विभागों के बीच तालमेल की कमी से सम्बन्धित प्रशासनिक सीमाओं को संस्थागत रेखांकनों के माध्यम से दुरुस्त करना होगा। विभिन्न सरकारी और ग़ैर-सरकारी संगठनों से जुड़े अधिकारियों के अनौपचारिक समन्वय/स्वैच्छिक सहयोग से सम्बन्धित व्यवहारगत अपेक्षाएँ ही काफी नहीं हो सकतीं। इस समय, समन्वय लगभग पूरे तौर पर विभागीय अध्यक्षों के साथ जिला प्रमुख के "व्यक्तिगत सम्बन्धों" पर निर्भर होता है। इसके लिए, लघु स्तरीय योजना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगी क्योंकि आवश्यक समन्वय के लिए औपचारिक तौर-तरीके स्थापित करने के लिए यही साधनता होगी।

भूमिका को स्पष्ट कर देने और अधिकार-क्षेत्र/विस्तार की सीमा निर्धारित कर देने से भूमिका को लेकर विभाग के अधिकारियों में भ्रम/अस्पष्टता की गुंजाइश कम रह जाएगी। बेहतर तारतम्य बनाने के लिए जिला प्रमुख को अधिक स्वायत्तता के अर्थ में प्रशासनिक सुधार वांछनीय होगा।

एकीकरण का सम्बन्ध मुख्य तौर पर अधिक उत्पादन, अधिक रोज़गार और अधिक समान वितरण के, और सबसे अधिक तो सतत् विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने से है, जिसके लिए विकास नीति में पर्यावरणीय सरोकारों के वर्गीकरण की आवश्यकता होती है। समन्वय स्थापित करने के लिए सम्बन्धित क्षेत्रकों पर निर्णयों के प्रभाव से सम्बन्धित विकासक्रमों की निगरानी और आयोजना की सहायता ली जा सकती है। इसमें नमूने के संदर्भ में क्षेत्रकीय तथा विभागीय दृष्टिकोण से हटकर क्षेत्रीय विकास/लाभार्थी उन्मुख दृष्टिकोण को अपनाना निहित है।

गतिविधियाँ

आयोजना के चरण में, निम्नलिखित कदम क्रमवार ढंग से उठाने होते हैं :

- मुख्य लक्ष्यों का निर्माण;
- आँकड़ों को एकत्रित करना अथवा उनका संग्रहण;
- आंकलित आवश्यकताएँ और कार्यनीतियाँ;
- संसाधन आबंटन की कार्यनीतियों का आकलन; जहाँ आवश्यक हों वहाँ ताजा आबंटनों की बात कहना; सीमाओं के अनुसार संवर्धन सम्बन्धी सामंजस्य;
- परियोजनाओं और कार्यक्रमों के बीच अंतर-सम्बन्धों की पहचान;
- कार्यान्वयन सम्बन्धी अंतरों को पाटने की सुनिश्चितता हेतु संगठन और प्रबंधन;
- आबंटन हेतु संसाधनों का आकलन; और
- जिला योजना, प्रादेशिक और राज्य विकास योजनाओं के बीच संपर्क स्थापित करना।

इस तरह, स्थानीय आयोजना में शामिल गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं :

- आवश्यकताओं का विश्लेषण;
- मिट्टी का प्रकार, भूमि उपयोग का स्वरूप, व्यवसाय, जलवायु, मानव, प्राकृतिक और पशु संसाधन जैसे भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक आँकड़ों से सम्बन्धित सूचनाओं का सहयोजन;
- संसाधन का कार्यनीतिकरण;
- प्राथमिकताओं को क्रमबद्ध करना;
- कार्यान्वयन तंत्र की स्थापना; और
- मूल्यांकन

सुंदरम के अनुसार, निर्दिष्ट काम निम्नानुसार तालिका में प्रस्तुत हैं:

तालिका 1

	काम	उपाय
i)	संसाधन विश्लेषण	संसाधन वस्तुतालिका सामाजिक-आर्थिक बैंचमार्क सर्वेक्षण विकासगत सीमाओं की पहचान चालू कार्यक्रमों का आकलन
ii)	कार्यनीति निर्माण	लक्ष्यों की पहचान विकास सम्बन्धी कार्यनीति का निर्माण
iii)	योजना निर्माण	योजनाओं और परियोजनाओं की पहचान लक्ष्य समूहों हेतु पारिवारिक आयोजना अवसंरचनात्मक आयोजना अवस्थिति सम्बन्धी आयोजना रोज़गार आयोजना संस्थागत आयोजना
iv)	कार्यान्वयन आयोजना	कार्यक्रम एकीकरण कार्यक्रम क्रमबद्धता वित्तीय कार्यक्रमबद्धता कार्यक्रम निगरानी मूल्यांकन

19.4 लघु स्तरीय आयोजना की सीमाएँ

संस्थागत सीमाएँ

उपर्युक्त के अनुसार से होने वाली आयोजना के निम्नलिखित लाभ हैं:

- यह त्वरित होती है
- तकनीकी कार्मिक, अर्थात् विभिन्न विभागों के जिला, प्रखण्ड तथा निम्न स्तर के अधिकारी आमतौर पर उपलब्ध होते हैं
- जिला और निम्न स्तर की योजनाओं का राज्य स्तर की योजना के साथ सामंजस्य करने की कोई समस्या नहीं होती है।
- योजनाओं का कार्यान्वयन सुनिश्चित होता है।
- नीचे से होने वाली योजना में अधिक समय लगता है और यह एक कठिन प्रक्रिया होती है।
- योजनाओं में निधियों तथा मानवशक्ति की उपलब्धता और लक्ष्यों की उपलब्धि के सम्बन्ध में विभागों को अपने दिशा-निर्देशों की उपलब्धता आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

अंत में, ग्राम अथवा बहुस्तरीय योजनाओं को सीडी/प्रखण्ड/तालुक्का अथवा मंडल की योजनाओं में शामिल किए जाने से पहले समायोजित और संशोधित करना चाहिए (वी. नाथ, 1993)।

सूचनागत सीमाएँ

स्थानीय स्तर पर, स्थिति को "सूचनागत संकट" बताया जा सकता है। प्रशासन में शताब्दियों से "ऊपर से नीचे" की ओर उन्मुखता रहती चली आई है, इसलिए आँकड़ों को भी उसी के अनुसार उन्मुखता दी जाती है क्योंकि वृहद् स्तरीय आवश्यकता के लिए आँकड़ें तैयार होते हैं, राष्ट्रीय लेखा जिसमें राष्ट्रीय आय, बचत और निवेश, विदेशी व्यापार और आर्थिक व्यवस्था शामिल होती है, और उसके नीचे के स्तरों पर ये कम से कमतर होते जाते हैं। स्थानीय स्तर की आयोजना के लिए प्रासंगिक आँकड़े या तो अपर्याप्त होते हैं या फिर योजना की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं होते। विकास आयोजना की उन्मुखता क्योंकि स्थानीय स्तर पर *स्थानिक* होती है, इसलिए सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के लिए आँकड़ों की आवश्यकता *विशिष्ट* संदर्भ में होती है, समग्रता के संदर्भ में नहीं। जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों, स्थानीय मानवशक्ति और रोज़गार आयोजना जैसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक सूचकों, और आय, उपभोग (खपत), रोज़गार, स्वास्थ्य, आवास, पोषण अथवा पोषण सम्बन्धी व्यवहार सम्बन्धी प्राथमिक आँकड़ों से सम्बन्धित सूचनाएँ अपर्याप्त हैं। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय के आधिकारिक दस्तावेज के अनुसार यही स्थिति है। 1970 के दशक के उत्तरार्ध में भारत में कम्प्यूटरों के प्रवेश, आँकड़ा आधारित (डाटाबेस) प्रौद्योगिकी और 1977 में प्रथम दूरसंवेदी परीक्षण ने आयोजना में भू-स्थानिक सूचना के प्रचलन और एकीकरण को आगे बढ़ाया। भारत सरकार ने 1980 के दशक में स्थानीय स्तर की आयोजना को संबल देने के लिए अनेक प्रौद्योगिकी-आधारित कार्यक्रम शुरु किए, मसलन विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली (Natural Resources Data Management System; NRDMS), अंतरिक्ष विभाग की राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रणाली (National Natural Resources Management System; NNRMS) और राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय) की जिला सूचना प्रणाली (District Information System; DILNIC)। बहरहाल, आँकड़ा संग्रहण में एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिससे नीतिगत सुझावों में अंतर क्षेत्रकीय प्रभाव सामने आते हैं।

सामाजिक-आर्थिक सूचकों के सम्बन्ध में *मात्रात्मक* और *गुणात्मक* दोनों ही आँकड़ों की आवश्यकता होती है, जैसे पोषण, रोज़गार, स्वदेशी निर्माण प्रथाओं, सांस्कृतिक रूढ़ियों से सम्बन्धित सांस्कृतिक प्राथमिकताएँ, रोज़गार, गरीबी का विस्तार और प्रकृति, स्थिति को सुधारने हेतु विशेष क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं से सम्बन्धित आँकड़ें जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं। अक्सर आँकड़े बहुत अधिक होते हैं, किन्तु प्रासंगिक नहीं होते हैं, क्योंकि कार्यक्रमों की आवश्यकताओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इस उद्देश्य से, समय-समय पर तदर्थ अध्ययन किए जाते हैं। किन्तु इस जानकारी को निरंतरता के आधार पर योजनागत उद्देश्यों के लिए योजना अभिकरणों को हस्तांतरित करने का कोई विधिवत् तरीका नहीं होता। तदनुसार, प्रत्येक स्तर पर योजना अभिकरणों के साथ-साथ तदनुरूप सूचना प्रसंस्करण अभिकरणों की आवश्यकता होती है जिससे कि अनुसंधान, सूचना सहयोजन, प्रसंस्करण और सम्बन्धित निर्णयकारक केन्द्रों तक संचार के काम हो सकें। सूचना संचार क्रांति की असीम क्षमता का उपयोग इस उद्देश्य के लिए हो सकता है।

जन भागीदारी

74वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 में, विकास नीति में लोगों, विशेषकर गरीब और सामाजिक दृष्टि से वंचित लोगों की आवश्यकताओं को शामिल करने हेतु एक लोकतांत्रिक और भागीदारी आयोजना प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम में ग्रामीण और शहरी आयोजना और स्थानिक तथा आर्थिक विकास के एकीकरण के लिए जिला योजना समितियों (DPC) और महानगर योजना

समितियों (MPC) का प्रावधान है। यह प्रावधान एकीकृत प्रादेशिक आयोजना की आवश्यकताओं को देखते हुए किया गया है, जिसमें प्रादेशिक और स्थानीय अवसंरचना, पर्यावरण संरक्षण और निवेश आयोजना और उनके स्थानिक तथा *अन्य* प्रभावों की ओर उचित ध्यान दिया गया है, जो *बाह्यताओं* के लिए ज़िम्मेदार हैं।

लघु स्तरीय आयोजना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक लोगों द्वारा अपने हित को मुखर करना है, जिसके लिए इसी उद्देश्य से गठित किसी मंच को माध्यम बनाया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन सहकारी संस्थाओं को माना जा रहा है। प्रशासन ने जन भागीदारी की आलोचना की जाती है, तो उसे "कार्य प्रणाली विहीन विचारधारा" बताया जाता है। तमिलनाडू के कुंद्रकुड़ी गाँव का सफल प्रयोग, तथापि, ऐसे संशयपूर्ण दृष्टिकोण का बिल्कुल सही जवाब है। इस गाँव में एक ग्राम योजना मंच (Village Planning Form; VPF) का गठन किया गया था, जिसमें गाँव के प्रत्येक जीवन-क्षेत्र के विशिष्ट वरिष्ठों को शामिल किया गया था, जैसे कारोबारी, वैज्ञानिक, पंचायत संघ के अधिकारी, वाणिज्यिक तथा सहकारी बैंकों के ऋण अधिकारी, शिक्षाविद्, कृषि वैज्ञानिक, विभिन्न सरकारी विभागों के प्रतिनिधि। इसे तमिलनाडू राज्य के सहकारी संस्था अधिनियम के अधीन पंजीकृत करवाया गया था। इस मंच ने स्थानीय लोगों को ऊर्जा से इतना भर दिया कि वे अपने हितों की बात करने लगे और अपने सरोकारों से सीधे जुड़े राजनीतिक मामलों में सक्रिय हिस्सेदारी करने लगे। मंच ने विकास आयोजना का सफल प्रयास किया है, जो खेती के वैज्ञानिक तरीकों के माध्यम से धान की बेहतर खेती और सामुदायिक कुँओं के माध्यम से बेहतर सिंचाई में दिखाई देता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि मंच ने डी.पी.ए.पी. जैसी सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन को सुनिश्चित किया है, जो दुधारू मवेशियों जैसी संपदाओं के वितरण के लिए लाभार्थियों की पहचान में हुई चूकों के कारण लागू नहीं हो पाई थीं। ग्राम योजना मंच (VPF) के माध्यम से पहचान और वितरण होने से यह कमी दूर हो गई है। बागवानी और रेशम उत्पादन के लिए बंजर भूमि में खेती शुरु की गई है और योजनागत पहलों में सक्रिय महिलाओं का सहयोग लिया गया है। लाभों को देखें तो, नागरिक समाज में गाँव के वरिष्ठों और ग़ैर-सरकारी संगठनों, अर्थात् नागरिक समाज और विभागों, और विभागों के बीच विभाग के अंदर, सामाजिक पूँजी के ऐसे संस्थायन पर बल दिया जा सकता है। ऐसी व्यवस्थाओं को जहाँ आवश्यक/वांछनीय समझा जाए वहाँ, कानूनी अथवा संस्थागत अनुबंधों के पालन के लिए, पंचायत संस्थाओं के व्यापक तत्वावधान के अंतर्गत लाया जा सकता है, मसलन, पंचायत की एक समिति के रूप में। कहीं भी इसकी प्रतिकृति, अथवा वृहद् से बृहत्तर पैमानों पर इसका निरंतर प्रयास किया जा सकता है।

लघु स्तरीय आयोजना की सांस्कृतिक सीमाएँ

भारत में पंचायती राज एक ऐतिहासिक संस्था है, कोई आधुनिक प्रवर्तन नहीं। वैसे, विकास योजना में प्रभावी महत्त्व और आपेक्षिक स्वतंत्रता की बदौलत, यह विभिन्न चरणों से होकर गुजरी है। यह व्यापक तौर पर माना जाता है कि प्राचीन और मध्य युगों में स्थानीय संस्थाओं को बेहतर लोकतंत्र और अधिक सांस्कृतिक वैधता मिली हुई थी, जब वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के तौर पर काम करती थीं और आवश्यक मात्रा में लोगों को भागीदार बनाती थीं। केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति राजनीतिक मजबूती की प्रक्रिया के साथ चलती थी जिसमें कई देश शामिल थे। यह प्रक्रिया अकबर के शासनकाल में शुरू हुई और अंग्रेजों के राज में अपने तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँची, और रेलवे तथा डाक-तार व्यवस्था शुरू होने से यह सुगम हो सकी। जब 1947 में अंग्रेजों ने सत्ता सौंपी, तब भारतीय राज्य एक संघ था। उस समय की राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों ने एक मजबूत राष्ट्र-राज्य को अनिवार्य बना दिया; इसलिए अपकेन्द्री शक्तियाँ किसी भी रूप में रही हों, उन्हे हतोत्साहित किया गया। सीमाओं की बात छोड़ दें, तो भारतीय संविधान के निदेशक सिद्धान्त अनुच्छेद 40 में, ज़मीनी स्तर के लोकतंत्र को ऊर्जान्वित करने के माध्यम से "स्व-शासन" के वादे की पुष्टि की गई। इस दिशा में किए गए

व्यावहारिक प्रयासों के परिणामस्वरूप निम्नलिखित सांस्कृतिक सीमाएँ (बाधाएँ) बन गई हैं (खान, 1993):

नौकरशाही को स्थानीय स्तर पर निर्वाचित निकायों की अधीनता से अप्रसन्नता हुई है। समझौते का अभाव महत्त्वपूर्ण नीतिगत मुद्दों पर असहमति और उसके बाद होने वाले अधिक्रमणों के रूप में व्यक्त हुआ।

ज़मीनी स्तर पर वास्तविक लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए राज्य कार्यपालिका में राजनीतिक संकल्प के अभाव के चलते स्थानीय निकायों को शक्तियों और कार्यों का पर्याप्त हस्तांतरण नहीं हो पाया, चुनाव नियमित नहीं हो पाए और उनमें अक्सर असाधारण विलंब और बार-बार अधिक्रमण हुए। व्यवहार के आयाम के संदर्भ में भी सत्ता की राजनीति चली, कि स्थानीय विधायकों को राजस्थान के विधानसभा चुनावों में 1969 और उसके बाद में राजनीतिक लाभ लेने के लिए ग्राम प्रधानों से होड़ करनी पड़ी।

संसाधनों की कमी सबसे बड़ी बाधा रही है। राज्य सरकारों के लगातार कर्ज में रहने के चलते वे "महिमामंडित नगरपालिकाएँ" बन कर रही गईं। इसलिए, स्पष्ट है कि वे स्थानीय शासनों को संभालने के अतिरिक्त बोझ को नहीं उठा सकीं।

एक मजबूत केन्द्र के तर्क का वैचारिक स्तर पर समर्थन करने के लिए लोकतंत्र के वेस्टमिंस्टर नमूने का हवाला दिया जाता रहा है, जिसमें प्रभुसत्ता संसद के पास रहती है, हालांकि भारत में स्थिति बिल्कुल अलग है (जहाँ प्रभुसत्ता लोगों के हाथों में है)। इस तर्क के बाद कोई भी अधीनस्थ स्तर प्रभावी ढंग से "प्रभुसत्ता" में साझेदारी नहीं कर सकता। लोग प्रेरित दिखाई देते हैं, हालाँकि न्यायपालिका भारत में कार्यपालिका और विधायिका पर पर्याप्त/काफी नियंत्रण रखती है (माथुर, 1986)।

19.5 पंचवर्षीय योजनाओं में लघु स्तरीय आयोजना

प्रारंभिक वर्षों में विकासगत प्रयास का मुख्य ध्यान खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने और पूँजीगत वस्तु क्षेत्रक के लिए आयात पर निर्भरता को घटाने पर था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान, एक स्थानीय समस्तर योजना की अवधारणा पर चर्चा हुई। तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान, राज्यों और प्रदेशों के साथ राज्य स्तरीय आयोजना का प्रयास किया गया। बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर स्थानीय शासन के तीन-स्तरीय ढाँचे को भी लागू किया गया। किन्तु, इसमें अपेक्षित सफलता हाथ नहीं लगी, जिससे नीति-निर्माताओं में यह आम सहमति बनी कि कुल नियोजित विकास की सफलता के लिए स्थानीय स्तर पर विकासगत आयोजना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह अहसास इस तथ्य से हुआ कि स्थानीय स्तर पर विकास सम्बन्धी कार्यनीतियों के उपइष्टतम (Suboptional) परिणाम सामने आए हैं क्योंकि नीतियाँ स्थानीय लोगों की अनुभूत आवश्यकताओं पर आधारित नहीं थीं और उनकी संसाधनगत मज़बूतियों/ कमज़ोरियों के अनुरूप नहीं थीं। शीर्ष पर बनी नीतियाँ विभिन्न प्रदेशों के लोगों की समायोजन क्षमता और संसाधनों की भिन्नताओं को समझने में असफल रहीं। तदनुसार, योजना आयोग ने 1969 में कुछ दिशा-निर्देश जारी किए और राज्य स्तर पर आयोजना तंत्र को मजबूत करने के लिए एक योजना 1972 में शुरू की गई। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान, विकेन्द्रीकरण को तब और गति मिली जब विशिष्ट क्षेत्र और विशिष्ट लक्ष्य समूह को ध्यान में रखकर अनेक योजनाएँ शुरु की गईं। इन योजनाओं की "अवस्थिति-विशिष्ट" आवश्यकताओं को देखते हुए, प्रखण्ड अथवा ब्लॉक को आयोजना की उपयुक्त इकाई माना गया। योजना आयोग ने प्रखण्ड स्तरीय आयोजना के लिए दिशा-निर्देश तैयार करने हेतु प्रो. एम. एल. दांतवाला की अध्यक्षता नें एक कार्य समूह का गठन किया। उसी के साथ, नई आवश्यकताओं के आलोक में स्थानीय शासन की संभावनाओं के अध्ययन के लिए भी अशोक मेहता के अधीन एक समिति का भी गठन किया गया।

किन्तु, प्रखंड आयोजना केवल बजट बनाने की कवायद तक ही सिमटी रही। आयोजना की लाभप्रद इकाई के रूप में, जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन करने के मामले में गुजरात और महाराष्ट्र सबसे आगे रहे। छठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान योजना आयोग ने आयोजना के कार्य प्रणाली सम्बन्धी पहलुओं की जाँच के लिए प्रो. हनुमंत राव की अध्यक्षता में एक कार्य समूह का गठन किया। यह बात सामने आई कि जिला स्तरीय आयोजना को सक्रिय करने में, विकेन्द्रीकरण की संस्कृति के संदर्भ में बहुत कुछ छूटा रह गया था जिसे सतत् और वास्तविक प्रयासों से ही ठोस रूप दिया जाना था।

जिला कलेक्टरों और मजिस्ट्रेटों और प्रायोगिक परियोजनाओं (Pilot Projects) को लेकर आयोजित कार्यशालाओं की एक श्रृंखला के बाद, जिले को एक बहुस्तरीय आयोजना की व्यवस्था के भीतर "उप राज्य कार्य इकाई" के रूप में स्वीकार किया गया। राष्ट्रीय और राज्य-स्तरीय योजनाओं की तुलना में, जिला योजना तो इस संदर्भ में उपयुक्त संस्थागत व्यवस्थाओं और क्षेत्र-विशिष्ट निवेश प्रस्तावों के बहुक्षेत्रकीय पैकेज के रूप में जिले का प्रतिनिधित्व करती है।

ग्राम विकास हेतु प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर गठित जी.वी.के. राव समिति और हनुमंत राव "कार्य समूह", दोनों ने ही जिला आयोजना के विषय को विस्तार से विवेचित किया है। जहाँ हनुमंत राव "कार्य समूह" ने जिला आयोजना को सक्रिय करने के तौर-तरीकों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया वहीं जी.वी.के. राव समिति ने सांदर्भिक आयाम पर ध्यान लगाया है, अर्थात् जिला आयोजना को जिला स्तर पर लोकतांत्रिक ढंग से गठित स्थानीय निकायों, जिला परिषदों, के अनुसार समायोजित करना।

दोनों कार्य समूहों ने जिला आयोजना की निम्नलिखित पूर्व शर्तें बनाई हैं :

- राजनीतिक संकल्प और प्रतिबद्धता
- जिला आयोजना निकाय
- आयोजन्ना हेतु एक उपयुक्त तंत्र की स्थापना
- आयोजना के कार्यों का सीमांकन
- वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण
- प्रशासनिक शक्तियों का प्रत्यायोजन
- आयोजना के सभी चरणों में सार्वजनिक भागीदारी और सभी स्तरों पर प्रशिक्षण तथा पुनर्प्रशिक्षण।

19.6 दसवीं योजना की प्राथमिकताएँ

दसवीं पंचवर्षीय योजना में एक "संसाधन योजना" से हटकर एक "सुधार योजना" की ओर जाने की घोषणा की गई है। योजना के कार्यान्वयन को पुष्टि की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य से प्रशासनिक व्यवहार, प्रक्रियागत आवश्यकताओं, आयोजना के पारिस्थितिकीय संदर्भ आदि के अनुसार आयोजना के गुणात्मक पहलू उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं जितने कि परिमाणात्मक लक्ष्य। इसलिए, दसवीं पंचवर्षीय योजना में वृहद् क्षेत्रकीय विशिष्ट आयोजना से हटकर व्यापक स्थानिक लघु स्तरीय आयोजना को अपनाने की घोषणा की गई हैं। शासन के राज्यगत नमूने को वापस लेने की बात स्वीकार कर ली गई है, और यह विशेषकर उन क्षेत्रों के लिए है जहाँ नागरिक समाज सुसंस्थापित है और सरकार का कामकाज संतोषजनक नहीं है। इसलिए, ज़ोर इस बात पर दिया जाएगा कि स्वैच्छिक संगठनों (Voluntary Organisations; VOs) को आयोजना और कार्यान्वयन में और अधिक निकटता से शामिल किया जाए और उनसे नागरिक-सरकार अंतःक्रिया में "कटिंग एज" स्तर पर और

अधिक काम लिया जाए। इस उद्देश्य से, उनकी मूल क्षमताओं को और बढ़ाया जाएगा; जहाँ संस्थागत आधार नहीं है वहाँ उनका निर्माण किया जाएगा, और पारदर्शी प्रक्रियाओं तथा जवाबदेही के अंतर्निहित तंत्र के माध्यम से स्वैच्छिक संगठनों के लिए बेहतर निधि प्रवाह को सुनिश्चित किया जाएगा। पंचायती राज संस्थाओं के साथ घनिष्ठतर संलिप्तता पर विचार किया जा रहा है। संलिप्तता के लिए ग़ैर-सरकारी क्षेत्र से और अधिक वित्तीय योगदान लिया जाएगा। स्वैच्छिक संगठनों द्वारा प्रस्तावित निर्मित-विकास के प्रवर्तनकारी नमूनों के सम्बन्ध में अनुसंधान और विकास के माध्यम से डाटाबेस बनाया जाएगा।

योजना की प्रगति जाँचने के लिए सारा ध्यान निगरानी तंत्र को मजबूत करने पर होगा। यह देखा गया है कि योजना के कार्यान्वयन के लिए ज़िम्मेदार अभिकरणों ने मौजूदा तंत्रों का सही उपयोग नहीं किया है। और, मौजूदा तंत्रों को मजबूत करने के लिए कोई स्पष्ट प्रयास भी नहीं किया गया है। प्रभावी निगरानी नहीं होने के कारण दुर्लभ संसाधनों की बहुत बर्बादी हुई है, और इसकी कोई खबर भी नहीं दी गई।

सार्वजनिक विकल्प वाले दृष्टिकोण के अनुसार, सरकार की वित्तीय सेहत सुधारने के लिए कदम उठाए जाएँगे, जिसके लिए पानी, बिजली, सिंचाई जैसी सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं की सही कीमत लगाई जाएगी, ताकि सरकार के लिए बेहतर राजस्व संग्रह सुनिश्चित हो। इसके अतिरिक्त, सतत् विकास हेतु उनके उपयोग के सम्बन्ध में अनुशासन लाया जाएगा और अनुदान में कटौती की जाएगी।

सिविल सेवा में सुधार के प्रयास हेतु ठेके के आधार पर पेशेवरों को शामिल किया जाएगा, लोगों को सूचना का अधिकार देने के माध्यम से पारदर्शिता सुनिश्चित की जाएगी, पुरस्कार और दंड की एक न्यायपूर्ण व्यवस्था कायम की जाएगी, विवेक के इस्तेमाल के लिए कम गुंजाइश रखी जाएगी, जवाबदेही के तंत्रों को मजबूत किया जाएगा, प्रत्येक स्तर पर ज़िम्मेदारी के साथ प्राधिकार को संतुलित किया जाएगा (अक्सर ज़िम्मेदारी प्राधिकार से पीछे रह जाती है), कम रोज़गार की स्थिति को नियंत्रित करके सरकार को उसके सही कद में रखा जाएगा, उन प्रक्रम सम्बन्धी अनावश्यक नियंत्रणों और विनियमों को समाप्त किया जाएगा जो उद्यमी ऊर्जा में बाधा पहुँचाते, भ्रष्टाचार पनपाते और आम आदमी को प्रभावित करते हैं। इसमें नियमों को तर्कसंगत बनाना, उचित प्रलेखन और अधिसूचना, प्रत्येक अधिकारी की जवाबदेही तय करना, प्रत्येक निर्णय के लिए समय सीमा निर्धारित करना, और *बदनीयती* के मामले में कानूनी और प्रशासनिक सहारा लेना शामिल होगा।

परियोजना/कार्यक्रम को और अधिक पेशेवर ढंग से तैयार किया जाएगा, और निर्देश चिह्नों के अनुसार कार्यान्वयन सम्बन्धी ज़िम्मेदारियों को स्पष्ट रूप में विभाजित किया जाएगा और उसकी निगरानी की जाएगी।

सरल, नैतिकतापूर्ण, जवाबदेह, उत्तरदायी, पारदर्शी, प्रयोक्ता- (Simple Moral, Accountable, Responsive, Transpartent, SMART) अनुकूल प्रशासन प्रदान करने हेतु ई-गवर्नेन्स के माध्यम से प्रक्रियाओं और नियमों को फिर से बनाने का प्रयास किया जाएगा।

जहाँ अनेक योजनाएँ एक-से उद्देश्यों के लिए चल रही हैं, वहाँ उनका विलय करके केन्द्रवृहदप्रायोजित योजनाओं और केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं को युक्तिपूर्ण (तर्कसंगत) बनाया जाएगा। आवश्यकतानुसार ही नई योजनाएँ चालू की जाएगी। कैफेटेरिया दृष्टिकोण के माध्यम से युक्तिपूर्णता लाई जाएगी, जिसमें राज्य आवश्यक योजनाओं का चुनाव तरहवृहदतरह की योजनाओं के संकुल से करते हैं। यह सभी उपाय बर्बादी को रोकने और कार्यक्रम के कार्यान्वयन की प्रक्रिया को सक्षम बनाने के लिए किए जाते हैं।

योजनाओं से संबद्ध सुधार सहायता के अच्छे परिणाम सामने आए हैं और इन्हें जारी रखा जाएगा। यह संदर्भ त्वरित सिंचाई लाभकारी कार्यक्रम (Accelerated Irrigation Benefit Programme; AIBP), त्वरित पॉवर विकास और सुधार कार्यक्रम (Accelerated Power Development and Reform Programme; APDRP), शहरी लाभकारी सुविधा (Urban Initiative Facility; UIF) और राष्ट्रीय सम विकास योजना (Rashtriya Sam Vikas Yojana; RSVY) का है।

सूचना सम्बन्धी बाध्यताओं से निपटने हेतु, स्थानीय स्तर की आयोजना के लिए आँकड़ों की उपलब्धता के सम्बन्ध में प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली (NRDMS) के लक्ष्य, दसवीं योजना (2002वृहद2007) के लिए इस प्रकार हैं :

- प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली जिला केन्द्रों की स्थापना
- कर्नाटक में प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली की कार्य प्रणाली हेतु प्रयोगशाला
- निम्नलिखित हेतु अनुसंधान तथा विकास की पहलों को बढ़ावा देना;

  क) आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली में सुधार लाना

  ख) आँकड़ों के उत्पादन और विश्लेषण के लिए नई तकनीकों का विकास और अंगीकरण

  ग) प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली वर्गीकरण को निम्नलिखित के लिए प्रोत्साहित करना:

     i) भूमि तथा जल प्रणाली का विश्लेषण

     ii) हिमालय के लिए पारिस्थितिकीय मॉडलिंग हेतु जैव-भौमिक डाटाबेस

     iii) भूस्खलनों का अध्ययन

     iv) तटीय क्षेत्र प्रबंधन और संरक्षण।

19.7 सारांश

इस इकाई में हमने वृहद् स्तरीय संसाधन विकास की कवायद के स्थान पर विकेन्द्रीकृत आयोजना पर विचार किया जो क्षेत्रवृहदविशिष्ट और संसाधन आधारित है, क्योंकि राज्यगत विकास योजनाओं को परिणामों के माध्यम से जीवनवृहदस्तर में अपेक्षित बेहतरी नहीं आई। अब ध्यान योजना कार्यान्वयन की प्रक्रिया को सुधारने और पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के लिए योजना की प्रगति की निगरानी करने पर है। योजना के निर्माण और कार्यान्वयन में नागरिक समाज और अधिक सक्रियता से भागीदारी करेगा। आवश्यक मात्रा में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु दमदार प्रयास किए जाएँगे।

19.8 मुख्य अवधारणाएँ

गाडगिल फार्मूला (Gadgil Formula) : चौथी पंचवर्षीय योजना से पहले योजना आयोग के माध्यम से योजनागत निधियों के हस्तांतरण हेतु कोई निश्चित मानदंड नहीं था। 1969 में ये मानदंड बने। इसमें 1969, 1980, 1990 और 1991 में संशोधन हुए। मौटे तौर पर कर प्रयास, वित्तीय अवस्था, प्रति व्यक्ति आय, जनसंख्या, जनसंख्या नियंत्रण प्रयास और परिवार नियोजन राज्यों के विनियोजन की मात्रा सुनिश्चित करते हैं।

प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली (NRDMS) : प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली (NRDMS) भारत सरकार का कार्यक्रम है जिसे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग ने विकास की कार्यनीतियाँ बनाने के उद्देश्य से कार्य प्रणालियों और तकनीकों के उद्‌विकास को उत्प्रेरित करने हेतु शुरु किया है। आँकड़ा निर्धारण की विस्तृत विविधता आँकड़ा प्रयोगकर्त्ताओं और आँकड़ा उत्पादक अभिकरणों के परिदृश्य में कार्यक्रम का उद्देश्य स्थानीय स्तर पर संसाधनों की एकीकरण आयोजना और प्रबंधन के लिए स्थानिक निर्णय सहयोग तंत्र के प्रयोग का विकास और प्रदर्शन है।

19.9 संदर्भ व अन्य लेख

चन्द्रशेखर, सी. एस., 1986, "माइक्रो लेवल प्लानिंग इन इंडिया", रमेश अरोड़ा और पी.सी. माथुर (संपा.), *डेवलपमेंट पॉलिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, एसेज़ इन ऑनर ऑफ प्रो. एम. वी. माथुर,* एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002वृहद07, अध्याय 8, "पॉलिसी इम्परेटिव्स एंड प्रोग्रौमैटिक इनीशिएटिव्ज़"।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002वृहद07, अध्याय 6, "गवर्नेन्स एंड इम्प्लीमेंटेशन"।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002वृहद07, अध्याय 5, "प्लानिंग एंड इम्प्लीमेंटेशन"।

खान, सुभान, 1993, "कांसेप्ट एण्ड स्ट्टेस ऑफ डिसेंट्रलाइज्ड डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग इन द मल्टीलेवल फ्रेमवर्क ऑफ इंडिया, राकेश हूजा, बी. येरम राजू (संपा.), *डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग इन मल्टीलेवल फ्रेमवर्क, रेलिवैंस, मैथड़ोलॉजीज़ एण्ड प्रॉस्पेक्ट्स,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर और नई दिल्ली।

माथुर, पी.सी., 1986, "डिसेंट्रलाइजेशन एंड डेवलपमेंट पॉलिसी इन इंडियाः पॉलिटिकल लिमिट्स ऑफ पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स इन राजस्थान (1959वृहद1984)" रमेश अरोड़ा और पी.सी. माथुर (संपा.), *डेवलपमेंट पॉलिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, एसेज़ इन ऑनर ऑफ प्रो. एम. वी. माथुर,* एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

नाथ, वी., 1984, "रीजन्स फॉर प्लानिंग", टी. एन. चतुर्वेदी (सीरिज सम्पादक), कामता प्रसाद (खंड संपा.), आई आई पी ए विशेषांक, प्लानिंग एण्ड इट्स इम्प्लीमेंटेशन, सलेक्टेड आर्टीकल्स।

नाथ, वी., 1993, "डसेंट्रलाइजेशन एंड डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग अंडर इकॉनामिक लिबरलाइजेशन" राकेश हूजा, बी. येरम राजू (संपा.), *डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग इन मल्टीलेवल फ्रेमवर्क, रेलिवैंस, मैथडोलॉजीज़ एण्ड प्रॉस्पेक्ट्स,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर और नई दिल्ली।

प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली, 2005, "द स्पेटियल स्पोर्ट फॉर लोकल लेवल प्लानिंग", विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार।

सुंदरम, के. वी., 2003, समीक्षार्थ प्रति, डिसेंट्रलाइज्ड मल्टीलेवल प्लानिंगः प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिसेज़ (एशियन एण्ड अफ्रीकन एक्सपीरियेंसेज़), कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

19.10 अभ्यास

1) वृहद् स्तरीय आयोजना की सीमाओं की विवेचना कीजिए।

2) लघु स्तरीय आयोजना के मुद्दों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 20 संरचनात्मक सुधार : संसाधन, वित्त, शक्तियाँ और कार्य

रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 स्थानीय निकायों की संरचना

20.3 स्थानीय निकायों की शक्ति और प्रकार्य

20.4 योजना की आधारिक संरचना

20.5 जन भागीदारी के तौर-तरीके

20.6 स्थानीय निकायों के संसाधन

20.7 भविष्य की कार्यसूची

20.8 सारांश

20.9 मुख्य अवधारणाएँ

20.10 संदर्भ व अन्य लेख

20.11 अभ्यास

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- स्थानीय निकायों की संरचना, शक्तियों और प्रकार्य को समझ सकेंगे;
- नियोजन के लिए आवश्यक आधारिक संरचनाओं की पहचान कर सकेंगे;
- लोगों की भागीदारी के तौर-तरीकों को रेखांकित (Modalities) कर सकेंगे;
- स्थानीय निकायों के संसाधनों की विवेचना कर सकेंगे; और
- भविष्य की कार्यसूची को स्पष्ट कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन की यह आलोचना ठीक ही की गई है कि इसमें शीर्ष पर बहुत अधिक तामझाम होता है। यह औपनिवेशिक प्रशासन की खूबी है जो बहुत समय से विद्यमान है। स्वाधीनता के उपरान्त, महाराष्ट्र सरकार की लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण समिति, 1961, में स्पष्ट कहा गया है, स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सरकार अधिकतर तदर्थ निकायों पर निर्भर थी। कालांतर में, इसकी परिणति बहुविध अभिकरणों के प्रसार में हुई, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय स्तर पर एक-दूसरे की गतिविधियों को संपन्न कर देने (अतिव्यापन) और भ्रम की समस्याएँ पैदा हुईं। नीतियों के प्रभावी

ढंग से कार्यान्वित न हो पाने के पीछे अतिशय केन्द्रीकरण ही कारण रहा है। यह राय रखने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है कि नीतियों के अप्रभावी कार्यान्वयन का कारण उचित नीति निर्माण न होना है, क्योंकि इसमें सम्बन्धित सरोकारों का पर्याप्त *समावेश* नहीं होता और उसे नीति में सम्मिलित भी नहीं किया जाता; और इसलिए इसकी परिणति "प्रासंगिक"/"युक्तिपूर्ण" नीति में नहीं होती क्योंकि इसमें लोगों की ज़रूरतों और सरोकारों का सीधे समाधान नहीं होता है। अधूरे प्रयासों के कारण सम्बन्धित क्षेत्रकों में अप्रत्याशित परिणाम सामने आते हैं क्योंकि निर्माण प्रक्रिया के दौरान उनका अध्ययन और स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। यह स्थिति हमें "व्यवस्थागत प्रतिबंधों" की ओर ले जाती है, जिसके कारण इस तरह की ज़रूरतों का विभाजन नहीं हो पाता। विकेन्द्रीकरण में एक ऐसा विकल्प बनने की संभावना तलाशी जा रही है जिसमें स्थानीय स्तर पर सम्बन्धित सरोकारों को स्पष्ट व्यक्त करने की छूट होती है और उसकी परिणति उन नीतियों में होती है जो ज़रूरतों से सीधे जुड़ी होती हैं; इसलिए ये प्रासंगिक होती हैं। इस अर्थ में यह व्यवस्थागत परिवर्तन होता है। इससे कार्यान्वयन की प्रक्रिया के युक्तिपूर्ण होने की भी अपेक्षा की जाती है जिससे संसाधनों के प्रतिबंध और कार्यान्वयन के अन्य संकोचों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है और उस स्तर पर सुलझाया जा सकता है जिस स्तर पर वे पैदा होते हैं, उस दूरस्थ योजना निकाय के द्वारा नहीं, जो अपर्याप्त तथ्यों पर आधारित हो सकती है। यही नहीं, प्रासंगिक तथ्यों की आपूर्ति के लिए आँकड़ों के संग्रह और रिकार्ड (अभिलेख) के रखरखाव को व्यवस्थित करने की ज़रूरत स्थानीय स्तर पर उद्देश्यों, प्रगति तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित सटीक अनुमानों के लिए होती है। कार्यान्वियन की कवायद क्योंकि फील्ड स्तर पर सम्पन्न और संकेन्द्रित होती है, इसलिए सरकार और नागरिकों के बीच संवाद के चरण पर ही प्रशासन और नियोजन के संकोचों से सम्बन्धित सरोकारों का समाधान करना अनिवार्य हो जाता है। इसका अभिप्राय दूरस्थ प्रशासन को लोगों के निकट लाना और इसे नागरिक-केन्द्रित बनाना है। इस इकाई में संसाधनों, वित्त, शक्तियों और कार्यों के संदर्भ में हम स्थानीय निकायों के संरचनात्मक सुधारों की विवेचना करेंगे। हम जन-भागीदारी हेतु आयोजना तथा तौर-तरीकों के लिए उपलब्ध आधारिक संरचना की भी विवेचना करेंगे।

20.2 स्थानीय निकाय की संरचना

73वें और 74वें संविधान संशोधनों के बाद शहरी और स्थानीय निकायों के लिए एक तीन-स्तरीय संरचना की संकल्पना की गई है। ग्रामीण स्थानीय निकाय नीचे से ऊपर के क्रम में इस प्रकार होंगे: ग्राम सभा (ग्राम स्तर पर), पंचायत समिति (खण्ड स्तर पर) और जिला परिषद् (जिला स्तर पर)।

ग्राम सभा की अपेक्षित भूमिका है ज़मीनी स्तर के लोकतंत्र के लिए एक सामाजिक आधार उपलब्ध कराना। ग्राम सभा का अधिशासी निकाय ग्राम पंचायत है। पहले ग्राम सभा एक निकाय निगम होता था जिसमें निरंतर उत्तराधिकार और साझा मोहर होती थी, उस पर निगमित नाम से मुकदमा किया जा सकता था अथवा वह स्वयं मुकदमा कर सकती थी, और अनुबंध कर सकती थी। संशोधन के पश्चात्, ग्राम सभा की यह स्थिति ग्राम पंचायत ने ले ली है, जो पहले ग्राम सभा की समिति हुआ करती थी। बहरहाल, विकास के मामलों में ग्राम सभा की बात अभी भी काफी वजन रखती है। यह लेखा परीक्षा और लेखा, वार्षिक योजनाओं, वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट आदि तैयार करने में सक्रिय भूमिका निभाती है और इसकी बैठकों की अध्यक्षता ग्राम पंचायत का सरपंच करता है। कुछ राज्यों में, एकता और सद्भाव को बढ़ावा देना, सामुदायिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए अंशदान तथा स्वैच्छिक श्रमदान का आयोजन करना, और इनके लिए लाभार्थियों की पहचान – ये ग्राम सभा के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। अगला स्तर पंचायत समिति का है। अधिकांश विकास कार्य इस स्तर पर होते हैं। तीसरा स्तर जिला परिषद् (जिला स्तर पर) है। इन निकायों की सदस्यता के सम्बन्ध में इस पाठ्यक्रम की अलग इकाई में चर्चा की जाएगी।

शहरी स्थानीय निकायों को भी एक समरूप तीन स्तरीय संरचना प्रदान की गई है। किन्तु, इनमें ग्रामीण निकायों की तरह सोपानिक व्यवस्था नहीं होती है क्योंकि इसमें प्रत्येक निकाय सीधे राज्य के अधीन कार्य करता है। ये निकाय नगर निगम, नगर परिषदें और नगर पंचायतें हैं। इससे शहरी स्थानीय परिदृश्य का बहुत-सा भ्रम दूर हो जाता है। 1992 के अधिनियम के पारित होने से पहले, शहरी स्थानीय शासन में नगर निगम, नगर परिषदें, नगर क्षेत्रीय समितियाँ (टाउन एरिया कमेटी) और अधिसूचित क्षेत्रीय समिति (नोटिफाइड एरिया कमेटी) आती थीं, और इनमें पूरे राज्यों में समरूपता नहीं होती थी। इस संदर्भ में, नगरपालिकाओं की संरचना और गठन में काफी भिन्नता होती थी और राज्यों के बीच इनमें परिभाषा और संरचना का व्यापक अंतर होता था। 1992 के अधिनियम के द्वारा नगरपालिका निकायों के गठन में कुछ समरूपता लाने का प्रयास किया गया है, और इसके लिए उनका वर्गीकरण *नगर निगम* (बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए), *नगर परिषदें* (छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए) और *नगर पंचायतें* (उप-नगरीय सरकारी निकाय) के रूप में किया गया है।

बहरहाल, जो व्यवस्थाएँ व्यवहार में हैं उनसे अप्रत्याशित तनाव पैदा हो रहे हैं। एच. रामचन्द्रन की रिपोर्ट के अनुसार, कथित तौर पर, ऐसे कुछ गाँव जिन्हें अब नगरपालिका क्षेत्रों में सम्मिलित किया जाएगा, वे अपना ग्रामीण दर्जा नहीं छोड़ना चाहते क्योंकि इससे वे केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं से वंचित रह जाएँगे। तमिलनाडु में 67 में से 45 *नगर पंचायतों* ने ग्रामीण दर्जे की माँग की है जिससे उन्हें 5 लाख रुपये से 10 लाख रुपये तक की केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं का लाभ मिल सके।

इतना ही महत्त्वपूर्ण एक और मुद्दा है जिसका समाधान होना ज़रूरी है। यह मुद्दा स्थानीय स्तर पर वास्तविक संघीय व्यवस्था का है जिसमें एक मंत्रिमंडल निर्णय लेता है और एक उचित ढंग से निर्वाचित विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है। इस समय, राजनीति अधिशासी अर्थात् महापौर (मेयर) एक नाम मात्र का नेता होता है, जबकि वास्तविक शक्तियाँ अथवा सत्ता आयुक्त के हाथों में होती हैं जिसे राज्य द्वारा नियुक्त किया जाता है। आयुक्त को राज्य के विधान के अनुसार एक नियत अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है। आयुक्त के कार्यकाल को बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है। आयुक्त के अधिकार वे होते हैं जो विधान द्वारा प्रदत्त और निगम अथवा स्थायी समिति के प्रतिनिधि मंडल द्वारा सौंपे गए होते हैं। वर्तमान आयुक्त का एक वैकल्पिक मॉडल कोलकत्ता, पश्चिम बंगाल, में लागू है और 1984 में लाए गए इस मॉडल को महापौर परिषद (Mayor-in-Council) प्रकार का नगर शासन कहा जाता है, इसे राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर सक्रिय फार्मूला को दोहराने वाली मंत्रिमण्डलीय सरकार कहा जा सकता है। इस व्यवस्था में एक महापैार और एक दस-सदस्यी मंत्रिमंडल होता है, जिसमें निर्वाचित पार्षदों से चुने गए मंत्री होते हैं (कोलकत्ता के संदर्भ में, बहु-सदस्यी वार्ड व्यवस्था के बजाय, एक सदस्यी वार्ड व्यवस्था में 141 वार्ड हैं)। आधारिक रूप में यह महापौर परिषद सी ए ओ व्यवस्था और एकीकृत संघीय ढाँचे का एक संकर नमूना है। इस मॉडल में नगर आयुक्त प्रमुख अधिशासी अधिकारी की हैसियत से महापौर के नियंत्रण और निगरानी में कार्य करता है।

नगर निगम वार्ड को "बरो" (पुर) में बाँट देता है, जिसमें प्रत्येक बरो से सम्बन्धित वार्डों से निर्वाचित पार्षदों की एक समिति होती है। पार्षद अपने में से एक को बरो का सभापति चुन लेते हैं। बरो समितियाँ महापौर परिषद् की निगरानी के अधीन होती हैं और उपस्थानीय कार्यों को सम्पन्न कराती हैं, जैसे जल आपूर्ति, जलनिकास, ठोस कचरे का संग्रह और निपटान, संक्रमण मुक्ति तथा स्वास्थ्य सेवाएँ, आवास सेवाएँ, प्रकाश व्यवस्था, कुछ किस्म की सड़कों की मरम्मत, उद्यानों और नाले-नालियों का रखरखाव आदि (तिवारी, 2005)।

विद्वानों की राय है कि भविष्य में वांछित स्थानीय शासन ऐसे होंगे जिनके पास ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका और नाइजीरिया के समान अपनी राजनीतिक कार्यपालिका की किस्म का निर्णय करने और उसे स्वतंत्र

होकर नियुक्त करने का अधिकार होगा। नगरपालिका कर्मचारियों के सम्बन्ध में आदर्श स्थिति यह होगी कि वह पूरे तौर पर स्थानीय शासनों के नियंत्रण में होगा, निजी भागीदारी, ठेका-आधारित रोज़गार आदि के माध्यम से संख्या में काफी कटौती करे और परिणामों के प्रति ज़वाबदेह बने।

20.3 स्थानीय निकायों की शक्ति और प्रकार्य

अभी 1992 में ही पारित 74वें संविधान संशोधन अधिनियम (Constitutional Amendment Act; CAA) का कार्यान्वयन ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध समिति की सिफारिशों के अनुसार हुआ है और इसका लक्ष्य शहरी स्थानीय निकायों को और अधिक या अधिकार प्रदान करना है। लोकतांत्रिक नगर शासन को नियोजक निकायों के रूप में ऐसे संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से विकसित करने का यह पहला प्रयास है जो उन्हें मजबूत और स्थिर बनाते हैं। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- बारहवीं अनुसूची को प्रभावी करना जिसमें आयोजना, विनियमन और विकास सम्बन्धी पहलुओं समेत शहरी स्थानीय निकायों के कार्य इंगित होते हैं;
- जिला और महानगर स्तरों पर विकास योजनाओं की तैयारी के लिए ज़िम्मेदार जिला तथा महानगर योजना समितियों का गठन;
- तीन लाख से ऊपर जनसंख्या वाले क्षेत्रों में वार्ड समितियों का प्रस्तावित गठन;
- वार्ड समितियों और नगरपालिकाओं को प्रदत्त ज़िम्मेदारियों और शक्तियों का कानून द्वारा निर्धारण;
- निश्चित अवधि में और समय से चुनाव कराना, यदि किसी नगरपालिका को किसी भी कारण से भंग किया जाता है तो 6 महीने के अंदर उसका पुनर्गठन हो जाना चाहिए;
- नगरपालिका वित्त के स्रोतों का कानून द्वारा निर्धारण और वैधानिक रूप में गठित राज्य वित्त आयोग द्वारा उसकी निश्चित अवधि में समीक्षा और नगर शासन की सहायतार्थ राज्य संसाधन बढ़ाने के लिए आवश्यक उपायों की सिफारिश हेतु केन्द्रीय वित्त आयोग के लिए उसे अनिवार्य करना;
- लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित नगर शासनों को समाप्त करने के लिए राज्य सरकारों के अधिकार पर प्रतिबंध; और
- नगरपालिका निकायों में महिलाओं और कमज़ोर वर्गों के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित होनी चाहिए, अल्पसंख्यकों के लिए इसमें आरक्षण की व्यवस्था नहीं है (डी.पी. तिवारी, 2005)।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम में ग्रामीण स्थानीय स्व-शासन के लिए शक्तियों और कार्यों का क्षेत्र निर्धारित किया गया है। ग्यारहवीं अनुसूची में 29 विषय दिए गए हैं (परिशिष्ट देखिए) जिनमें सम्बन्धित ज़िम्मेदारी ग्रामीण स्थानीय शासन को सौंपी गई हैं। बहरहाल, यदि उनसे सम्बन्धित अधिकांश शक्तियाँ नौकरशाही और राज्य अथवा केन्द्रीय विधायिकाओं के पास ही बनी रहती हैं तो यह एक सैद्धान्तिक कवायद बनकर रह जाएगी। स्थानीय स्तर पर वास्तविक विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने के लिए "नीचे से ऊपर की ओर" वाली नीतियों को अपनाना अनिवार्य होगा।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, से पहले स्थानीय निकायों को सौंपे गए कार्य आम कल्याण सम्बन्धी मामलों से जुड़े थे, जैसे जन-स्वच्छता, सफाई आदि, और उनमें कृषि, पशु पालन, सामाजिक वानिकी आदि जैसे विकास सम्बन्धी सरोकारों को जोड़ा जा सकता था। मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि स्थानीय निकाय "वैधानिक" कार्यों के बजाय "अभिकरण" कार्यों को करने के अधिक इच्छुक रहे हैं (लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण समिति की रिपोर्ट, 1961)।

अब जोर विकास योजना पर है। इसलिए जहाँ तक स्थानीय निकायों का प्रश्न है, तो यह नमूनागत परिवर्तन है क्योंकि उन्हें सच्चे अर्थ में "स्वशासन" की संस्थाओं के रूप में विकसित करने का प्रयास होता है। इस अधिनियम में राज्य सरकारों को यह निर्देश है कि वे सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के लिए योजनाओं की तैयारी के सम्बन्ध में शक्तियों और ज़िम्मेदारियों का हस्तांतरण करें, और सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के लिए उन्हें सौंपी गई योजनाओं को कार्यान्वित करें, जिनमें ग्यारहवीं अनुसूची में निर्दिष्ट मामलों से सम्बन्धित योजनाएँ भी शामिल हैं। बहरहाल, यह फैसला राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है कि किन कार्यों को हस्तांतरित करना है और किन शक्तियों अथवा अधिकारों को सौंपना हैं। व्यापक तौर पर सिद्धान्त यह प्रतीत होता है जो कुछ निचले स्तर पर निपटाया जा सकता है उसे उसी स्तर पर जूझने के लिए छोड़ देना चाहिए। विभिन्न राज्यों में इस अधिनियम का अध्ययन करने से शक्तियों और कार्यों के हस्तांतरण का निम्न स्वरूप सामने आता है:

श्रेणी क

उत्तर प्रदेश, बिहार राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, असम और कर्नाटक जैसे राज्य, जिनके पास प्राथमिकता प्राप्त गतिविधियाँ नहीं हैं बल्कि ग्यारहवीं अनुसूची में दिए गए विषय होते हैं, और योजना तथा बजट की तैयारी, सद्भाव और एकता बनाए रखना, प्राकृतिक आपदाओं से राहत आदि जैसे कुछ अन्य सामान्य विषय इनके अतिरिक्त होते हैं।

श्रेणी ख

उड़ीसा, गुजरात, तमिलनाडू और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य जिन्होंने कार्यों को अधिदिष्ट और अनिवार्य में विभाजित कर दिया गया है। पहले वर्ग में वे कार्य हैं जो निधि उपलब्ध होने की स्थिति में ही संपन्न किए जाते हैं।

श्रेणी ग

इस श्रेणी में वे राज्य आते हैं जिन्होंने ग्यारहवीं अनुसूची के अनुसार अपनी अलग सूची तैयार की है। ये राज्य हैं हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश। बहरहाल, इस कवायद को आज की अपेक्षा अधिक युक्तिपूर्ण बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए मामले को केवल सम्बन्धित विभाग तक ले जाने के बजाय विशेषज्ञ समूहों का गठन करना होगा (बाजपेयी और वर्मा, 1995)।

आज की स्थिति में विकास के प्रयास विभिन्न राज्य सरकारों की सुविधा और प्राथमिकता के अनुसार किए जाते हैं क्योंकि उन्हें विकेन्द्रीकरण के अपने तौर-तरीके चुनने की स्वतंत्रता होती है। बहरहाल, मामलों को राज्य सरकारों पर छोड़े देने से इस सम्बन्ध में उत्साहहीन पहल की गुजांइश बन जाती है, जिसे संघीय-राज्य नीति की एक बंदिश मानकर स्वीकार करना ही होता है। रामचन्द्रन के अनुसार, संशोधनों के बाद भी विभिन्न स्तरों पर इन निकायों की शक्तियों और कार्यों के सम्बन्ध में काफी दुविधा बनी हुई है। यह दुविधा उन असंख्य मुकदमों में स्पष्ट/व्यक्त होती है जो एक ओर तो जिला और निचले स्तर के निर्वाचित निकायों और दूसरी ओर राज्य सरकार तथा उसके अधिशासियों के सदस्यों के बीच चल रहे हैं। उदाहरणतः जिला परिषद् सदस्यों ने जिला परिषद् अधिनियम को सरकार द्वारा प्रभावी ढंग से लागू न कर पाने के विरोध में सामूहिक त्यागपत्र की धमकी दी है। इसी तरह, उड़ीसा और महाराष्ट्र में जिला परिषद् के अध्यक्षों ने पंचायत निकायों की शक्तिहीन अवस्था को लेकर प्रदर्शन किया है। आंध्र प्रदेश में, राज्य सरकार द्वारा जन्मभूमि योजनाओं के माध्यम से निर्वाचित निकायों को दरकिनार कर नोडल अधिकारी नियुक्ति कर दिए जाने के बाद अपनी शक्ति पर नियंत्रण हो जाने से मंडल परिषद प्रमुखों में रोष है। इस तरह, संशोधन अधिनियमों के माध्यम से किए जा रहे संरचनात्मक सुधार के वास्तविक कार्यान्वयन में, कभी-कभी विसंगतियाँ बनी रह जाती और उभर आती हैं।

20.4 योजना की आधारिक संरचना

जिला योजना समितियाँ और महानगर योजना समितियाँ (District Planning Committees/Mahanagar Planning Committees: DPC/MPC) सम्मिलित शहरी और ग्रामीण नियोजन और स्थानिक और आर्थिक विकास के एकीकरण की व्यवस्था करती हैं। इसमें एकीकृत स्थानिक/क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता का निराकरण किया जाता है, और इस क्रम में आधारिक संरचना, पर्यावरणीय संरक्षण, निवेश योजना और उनके स्थानिक तथा अन्य प्रभावों जैसे तमाम सम्बन्धित पंहलुओं पर उचित ध्यान दिया जाता है। जिला योजना समितियों और महानगर योजना समितियों का गठन राज्य जिला पंचायत/क्षेत्रीय और नगर योजना अधिनियमों के अंतर्गत करना होता है। नियोजन तो ऊपर से नीचे की ओर और नीचे से ऊपर की ओर भी होता है, क्योंकि यह नीचे से ऊपर के क्रम में स्थानिक स्तरों पर एक एकीकृत ढाँचे के तौर पर विकसित होता है, और इसे बहुस्तरीय योजना कहा जा रहा है। इस ढाँचे के अंतर्गत पंचायतें/नगरपालिकाएँ अपने क्षेत्रों के लिए योजनाएँ तैयार करती हैं जिन्हें जिला स्तर पर जिला विकास योजना प्रारूप के रूप में समेकित किया जाता है। महानगर विकास योजना महानगर योजना समितियों द्वारा तैयारी की जाती है। समस्त जिला और महानगर विकास योजनाओं के परिणामस्वरूप तब राज्य स्तर पर एक योजना का निर्माण होता है।

जिला योजना समिति

यह समिति निम्नलिखित कार्यों में सम्मिलित होती है :

1) विकास योजना प्रारूप तैयार करना, जिसमें पंचायतों और नगरपालिकाओं के बीच साझा हित के मामलों को ध्यान में रखते हुए जिले की स्थानिक योजना भी शामिल हैं।

2) विकास योजनाएँ तैयार करने और उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के सम्बन्ध में स्थानीय निकायों को परामर्श और सहायता देना।

3) जिला विकास योजनाओं के कार्यान्वयन का समन्वय और निगरानी।

4) जिला विकास योजनाओं में सम्मिलित स्थानीय स्तर की परियोजनाओं की योजना और कार्यान्वयन के लिए स्थानीय निकायों को संसाधनों का वितरण।

महानगर क्षेत्रीय योजना समिति

महानगर योजना समितियों को निम्नलिखित कार्य सौंपे जाते हैं :

1) महानगरीय क्षेत्रों के लिए विकास योजना प्रारूप तैयार करना।

2) महानगरीय क्षेत्रों में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का स्थानिक समन्वय और समूचा परिदृश्य ध्यान में रखते हुए, यदि आवश्यक हो तो, स्थानीय क्षेत्रीय योजना में संशोधनों की सिफारिश करना।

3) विकास योजनाओं की तैयारी में स्थानीय निकायों को परामर्श और सहायता देना।

4) क्षेत्र की अनुमोदित विकास योजना के प्रभावी कार्यान्वयन की निगरानी करना। प्रमुख सड़कों, ट्रंक सेवाओं, विद्युत, दूरसंचार आदि जैसी आधारिक संरचनाओं के प्रावधान वाली परियोजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन करना।

जैसा कि *आर्थिक सर्वेक्षण* (*Economic Survey*) (2004-05) में स्पष्ट कहा गया है, आर्थिक सेवा प्रदान करने के बारे में फैसले करने की दिशा में स्थानीय सरकारों के सशक्तिकरण के लिए सार्वजनिक वित्त

के एक नए ढाँचे की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा शहरी खर्चों को शहरी स्थानीय निकायों के माध्यम से वहन किया जाता है। अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर सार्वजनिक वस्तुओं के प्रदान करने पर शहरी स्थानीय निकायों के बेहतर नियंत्रण के लिए ज़रूरी हो जाता है कि उन्हें उनके अधिकार क्षेत्र के भीतर सेवाओं के प्रबंधन और वित्त पर अधिक नियंत्रण दिया जाए। इसके लिए, राज्य सरकारों और स्थानीय शासनों के बीच अधिकारों के विखण्डन को समाप्त करना होगा। शहरी वित्त में बढ़ोतरी के दो तरीके हैं, बॉण्ड योजनाओं के माध्यम से पूँजी बाज़ारों तक पहुँच और केवल गरीबों की सुरक्षा के लिए लक्षित अनुदान और शुल्क का बेहतर प्रयोग। इसके लिए जबावदेही का बेहतर तंत्र विकसित करना ज़रूरी होगा। स्थानीय निकायों के नियंत्रण में लाने के लिए, विकास की सभी योजनाओं को युक्तिपूर्ण बनाना ज़रूरी होगा। अन्य पैरास्टेटल विकास अभिकरणों को शहरी स्थानीय निकायों के प्रति एक पूरक भूमिका निभानी चाहिए जो स्थानीय निकायों की शक्तियों और कार्यों को हड़पने के लिए नहीं है। शहरी आधारिक संरचना के विकास में सार्वजनिक निजी भागीदारी को बेहतर ढंग से सुरक्षित किया जाए।

विषय क्षेत्र

इस बारे में व्यापक आम राय है कि ग्रामीण विकास से अधिक शहरी विकास पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। शहरी भीड़भाड़ की समस्या विशेष संकट है। यह तब है जब शहरीकरण की दशकीय दर में गिरावट आई है। यह शायद ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता अथवा केन्द्रीय इलाकों में अवैध बसने के लिए जमीन की अनुपलब्धता के कारण है कि पलायन प्रवास की प्रवृत्ति थोड़ी-बहुत समाप्त हो गई है (दसवीं योजना, 2002-2004)। शहरी विकास की योजना बनाने का यह सबसे अच्छा समय है। शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि की दशक दर 1971-81 में 47 प्रतिशत थी जो 1991-2001 में नीचे आ गई। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में वृद्धि की दशकीय दर क्रमशः 17.9 प्रतिशत और 31.2 प्रतिशत थी और जिससे शहरी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक दर का पता चलता है। बहरहाल, भारत में शहरीकरण का परिमाण विश्व में निम्नतम है। 2000 के लिए संयुक्त राष्ट्र का आकलन दर्शाता है कि कुल जनसंख्या का 47 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में रहता है, जबकि शहरी जनसंख्या का अनुपात 75 और 80 प्रतिशत के बीच है। एशिया में यह 36.7 प्रतिशत है। एशिया में, चीन और इंडोनेशिया, जैसे देश 1950 में शहरीकरण के निम्न स्तरों से शुरु होकर अब क्रमशः 31.2 प्रतिशत और 40.9 प्रतिशत शहरीकरण के साथ भारत को पीछे छोड़ चुके हैं। इससे पहले कि विकास की गति योजना को पीछे छोड़ जाए, योजना बनाने का यही सबसे अच्छा समय है। यह याद रखना ज़रूरी है कि शहर तो विकास के बिजलीघर हैं। ग्रामीण विकास से अधिक शहरी विकास पर ध्यान देने की आवश्यकता है। वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण के नए वातावरण में सेवाओं में विकास के अपार नए अवसर सृजित होंगे और ग्रामीण युवाओं के लिए रोज़गार के अवसर पैदा होंगे। शिक्षा में, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी, खुदरा क्षेत्रक और वित्तीय सेवाओं में भारी निवेश की आवश्यकता है, क्योंकि अवसर अधिकाधिक इन्हीं क्षेत्रों में बनेंगे। डॉ. अमर्त्य सेन ने कार्यनीति को कल्याण के अर्थशास्त्र के रूप में रखा है। इसके अनुसार, लक्ष्य तो एक अच्छे जीवन के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा में निवेश द्वारा "हकदारी" बनाने का होना चाहिए।

योजना बनाने में, जोर *जनशक्ति योजना* पर होना चाहिए। शैक्षिक संस्थानों को भी उसके अनुसार रोज़गार-उन्मुख शिक्षा देने के लिए निदेशित किया जा सकता है। इस संदर्भ में, प्रशासनिक सुधार की तुरंत आवश्यकता होगी, जिसमें विशेषज्ञों की बात को अधिक महत्त्व देना होगा क्योंकि ग्रामीण विकास सामान्य जन का नहीं, वैज्ञानिकों का क्षेत्र है। संगठनात्मक सौपानिक व्यवस्था इसके के लिए महत्त्वपूर्ण निहितार्थ है क्योंकि नौकरी के विवरण, नियंत्रण के विस्तार, आदेश की एकता आदि से सम्बन्धित पुनः व्यवस्थाओं को प्रभावित करने की आवश्यकता हो सकती थी। बदले पारिस्थितिकीय संदर्भ के अनुसार औपचारिक और अनौपचारिक संगठन को ज़रूरत के अनुरूप बनाने के लिए प्रवर्तनकारी नवाचारी ओ.

एण्ड एम. समाधानों को तैयार करना होगा। नागरिक समाज की भागीदारी अनिवार्य रूप में बढ़ेगी। आगे सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में निजी क्षेत्रक की अधिकाधिक भागीदारी होगी। नागरिक समाज और सरकार के बीच साहचर्य के तौर तरीके बनाने होंगे। यहाँ दोहराना होगा कि शहरी विकास की योजना बनाने का यही सही समय है। योज़ना और वित्त पोषण में ग्रामीण विकास से अधिक शहरी विकास पर विचार करना होगा, क्योंकि गाँवों को विकास के अतिरिक्त प्रभावों से हमेशा लाभ होगा। शहरी विकास से यह अपेक्षा है कि उसके अतिरिक्त प्रभावों से ग्रामीण संपन्नता में बढ़ोतरी होगी। उदाहरण के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों, शहरी क्षेत्रों के आसपास की उन्नत जल आपूर्ति सेवाएँ शहरी क्षेत्र से निकटता के कारण होने वाली महँगी फसलों और अन्य अमूर्त लाभों के लिए बाजार की भूमिका निभाती हैं।

देवप्रिय दत्त (2004) के अनुसार, नई उभरती संस्थाओं के लिए जो आदेश है उसमें एकीकृत स्थानिक विकास की योजना के निर्देश की भी ज़रूरत है जिसके लिए स्थानीय संसाधनों से सम्बन्धित आँकड़ों के संग्रह और समाकलन की बहुत अधिक ज़रूरत है, क्योंकि ये स्थानीय स्तर की योजना बनाने के लिए प्रासंगिक जानकारी जुटाने के लिए आँकड़ों के प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त उपकरण हैं। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने संभाव्य प्रयोक्ताओं के लिए भू-सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (Geo-ICTE) और उपकरण बनाने तथा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली (Natural Resources Data Management System: NRDMS) चालू की है। इसे एक आर एण्ड डी कार्यक्रम के रूप में चालू किया गया था। तब से अब तक इसने अनेक उपकरण और तकनीकें विकसित की हैं, जिनमें से अनेक का प्रदर्शन स्थानीय शासन की संस्थाओं के लिए किया जा चुका है। बहरहाल, (1) स्थानीय स्तर पर इन उपकरणों के उपयोग की प्रौद्योगिकीय क्षमता का अभाव है; (2) स्थानीय स्तर पर सांगठनिक कार्य के साथ भू-सूचना और संचार प्रौद्योगिकी उपकरणों का जुड़ावा बढ़िया नहीं है; (3) सभी स्तरों पर मानक और नवीनतम स्थानिक आँकड़ें उपलब्ध नहीं हैं; और (4) एकीकृत अंतर-क्षेत्रकीय योजना निर्माण के लिए आँकड़ों की साझेदारी का अभाव है। इसलिए स्थानीय स्तर पर आवश्यक प्रौद्योगिकीय और सांगठनिक योग्यता का निर्माण एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के कार्यान्वयन में राष्ट्रीय सूचना संगठन (National Informatics Organisation) ने केन्द्रीय भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय सूचना केन्द्र (National Information Centre; NIC) ने जिला स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के लिए अनेक पहलें की हैं। ऐसी दो पहलें : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की जिला सूचना प्रणाली (District Information System of National Information Centre: DIC NIC) और कम्प्यूटरीकृत ग्रामीण सूचना प्रणाली परियोजना (Computerised Rural Information Systems Project: CRISP) हैं। अनुसंधानकर्त्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सूचना प्रौद्योगिकी को गुजरात राज्य में, और विशेषकर एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme: IRDP) में सफलतापूर्वक लागू किया गया है। कर्नाटक से तुलना करें तो यहाँ सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग रोजमर्रा के संचालन कार्य के लिए नहीं बल्कि विश्लेषण के उद्देश्यों के लिए किया गया है। गुजरात में, सूचना प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग बहुत व्यापक स्तर पर हुआ है, क्योंकि अनुप्रयोगों के विकास के लिए प्रयास स्थानीय उन कर्मचारियों की पहल पर हुआ है जो सीखने और कार्य करने, और स्थानीय योजना के लिए प्रासंगिक आँकड़ा आधार तैयार करने के प्रवर्तनकारी तरीके ढूँढ़ने को तैयार हैं। जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों के (District Rural Development Agency: DRDA) के स्तर पर दिहाड़ी मजदूरी डॉटा एंट्री आपरेटरों के प्रशिक्षण और ठेकेदारी नियुक्ति के प्रयास किए गए हैं। इस प्रयास को आगे बढ़ाने के लिए, स्थानीय अभियांत्रिकी महाविद्यालयों के साथ सहायता और प्रशिक्षण के लिए सम्बन्ध बनाए गए हैं। इस मामले में, विशेषकर एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में, उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई है। गरीबी के स्तर का आकलन करने के लिए प्रत्येक परिवार की

परिसम्पत्तियों, भूमि जोतों आदि से सम्बन्धित स्थानीय आँकड़े (संकलित और समाकलित) तैयार किए गए और उसमें प्रत्येक उल्लिखित किस्म को उचित महत्त्व दिया गया। इन आँकड़ों को एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम की निष्पादन/प्रगति पर आरोपित किया गया, जिससे सम्बन्धित क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों और आधारिक संरचना के अनुसार आवश्यकताओं से सम्बन्धित क्षेत्र विशिष्ट की स्थिति उजागर हुई।

कर्नाटक और गुजरात की सफलता की तुलना आश्चर्यजनक है, क्योंकि जहाँ तक योजना निर्माण के लिए आधारिक संरचना की बात है तो उसमें कर्नाटक की स्थिति बेहतर रही है। कर्नाटक में, जिला परिषद कहीं अधिक शक्तिसंपन्न योजना अभिकरण है और इसलिए वह विकास कार्यों के नियंत्रण, और वांछित बदलाव लाने के संदर्भ में बेहतर स्थिति में है। दूसरी ओर, गुजरात में प्रयास केन्द्र द्वारा प्रायोजित और नाममात्र की स्वायत्तता वाले अभिकरण DRDA और जिला परिषद् के समकक्ष किन्तु उसकी जैसी शक्तिसम्पन्नता से विहीन जिला पंचायत के बीच बंटा है। अंतर है तो इन दो राज्यों के दृष्टिकोण में। जहाँ कर्नाटक विधान पर और इसलिए स्थानीय निर्णय केन्द्रों (अभिकरणों) को शक्ति के हस्तांतरण पर निर्भर रहा है, वहीं गुजरात में प्रयास विनियमन समाप्त करने की ओर अधिक रहा है, जहाँ संवर्धन सम्बन्धी बदलाव, स्थानीय पहल के माध्यम से, योजना के स्थानीय स्तर पर प्रासंगिक अनुप्रयोग के परिणामस्वरूप हुए हैं, जहाँ लोग राज्य प्रायोजित प्रौद्योगिकी के निष्क्रिय प्राप्तकर्त्ता नहीं अपितु उसके सक्रिय भागीदार हैं। निष्कर्ष यह है कि सूचना प्रौद्योगिकी वहाँ सफल होती हैं जहाँ लोगों में स्वामित्व का बोध होता है, वहाँ नहीं जहाँ एकपक्षीय व्यवस्था होती है और जहाँ किसी केन्द्रीय अभिकरण से निर्देश प्राप्त होते हैं (*जर्नल ऑफ ग्लोबल इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी मैनेजमेंट*)।

20.5 जन भागीदारी के तौर-तरीके

शासन में लोगों की भागीदारी के लेकर काफी दुविधा है। इसका क्या अर्थ है? यह कैसे निश्चित किया जाए; किस तरीके में; किन क्षेत्रों में? हिक्की और मोहन (2003) के अनुसार भागीदारी को आसन्न नहीं समझना चाहिए, अर्थात् कुछ कार्यक्रमों में तदर्थ भागीदारी किन्तु व्यापक अर्थ में नागरिकता की व्यापक अवधारणा के रूप में संकल्पित जो भागीदारी को एक अंतर्भूत सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखती है जो समस्त सामाजिक, राजनीतिक और समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं में एक अंतःधारा के रूप में प्रवाहित रहती है। इसलिए, नागरिकता को विकास के स्थानीय कार्यसूची से जोड़ने की ज़रूरत है। अनुभव के स्तर पर, इस बात के अधिकाधिक प्रमाण मिल रहे हैं कि अपवर्जन को चुनौती देने, संसाधनों के पुनः वितरण और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के संदर्भ में, शासन और विकास के भागीदारी दृष्टिकोणों ने, जहाँ सतत् सफलता अर्जित की है, वहाँ वे उस अराजनीतिक परम्परा अथवा परियोजना में अवस्थित हो गए हैं जो सुनिर्मित संस्थागत प्रवर्तनों अथवा हस्तक्षेपों के बजाय विकास के प्रति एक विशिष्ट मौलिक दृष्टिकोण को अपनाती है। इसलिए, सैद्धान्तिक निरूपण के अनुसार आमूल व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है जिसे जाइल्स और मोहन ने "आलोचनात्मक आधुनिकता" के रूप में कहा है, जहाँ पहलें संस्थाओं की अपेक्षा नागरिकों की ओर से अधिक होती हैं। इसलिए सरकार को ऐसे संस्थागत तंत्रों को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय होकर कार्य करना चाहिए जो संभावना को यथार्थ का रूप देते हैं। जन भागीदारी को एक स्तर ऊपर उठकर परियोजना के स्तर से नीति के स्तर पर पहुँचना होता है जो लोगों के राजनीतिक सशक्तिकरण की ओर ले जाता है, उन्हें केवल कुछ तकनीकी अध्ययनों में संलिप्त नहीं करता। यहाँ भागीदारी ग्रामीण मूल्यांकन (Participatory Rural Appraisals: PRA) का उदाहरण दिया जा सकता है जिनका इस्तेमाल इस समय आपदा कम करने और अपदा के प्रति संवेदनशीलता का अध्ययन करने और विश्व बैंक द्वारा शुरु की गई गरीबी घटाने की नीति के प्रबोधन के लिए भागीदारी गरीबी आकलनों में हो रहा है और यह इस आलोचना के बाद की स्थिति है कि सहायता की शर्तों के साथ जोड़ा जा रहा है और असली ज़रूरतों से उसका सम्बन्ध नहीं है

(ब्लैकबर्न और हॉलैड, 1998)। भागीदारी विकास और नागरिकता के सम्बन्ध की संकल्पना कुछ हद तक अभिकरण नीति व्यवहारों और संस्थागत मानक नियमों की एक श्रृंखला के बीच परस्पर क्रियाओं के संदर्भ में की जा सकती है जिसके द्वारा :

"नागरिकता को व्यवहारों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक सदस्य को समाज के समर्थ सदस्य के रूप में परिभाषित करते हैं और जो उसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों और सामाजिक समूहों की ओर संसाधनों के प्रवाह को आकार देते हैं" (रॉबर्ट्स, 1992 : 3)।

इस प्रकार की व्यापक संकल्पना तो भागीदारी को विशिष्ट कार्यक्रमों में आसन्न भागीदारी से भी आगे एक ऐतिहासिक और सतत प्रक्रिया की ओर ले जाती है जिसके द्वारा लोग अपने अधिकारों को समाज के समर्थ सदस्यों के रूप में विस्तार देते हैं और प्रशासन को नागरिक केन्द्रित पुट देते हैं। इसलिए इस संबंध में भागीदारी नीति में उन उपायों का प्रस्ताव किया जाता है जिनसे लोग ज़िम्मेदार नागरिकों के रूप में अपने अधिकार जताने के योग्य बनें, और यह बेहतर शिक्षा, राजनीतिक संवाद, सूचना का अधिकार आदि के माध्यम से होगा। वेबस्टर (Webster) और एंगबर्ग पीटरसन (Engberg Peterson) (2003) के अनुसार, "राजनीतिक स्थान" के निम्नलिखित तीन विश्लेषणात्मक आयाम हैं :

- संस्थागत सारणी, जिसके माध्यम से गरीब लोग नीति निर्माण और कार्यान्वयन तक पहुँच बना सकते, उस पर नियंत्रण अथवा प्रतिवाद कर सकते हैं।
- राजनीतिक आख्यान, जिनमें गरीबी और गरीबी घटाने के विशिष्ट मुद्दे होते हैं।
- गरीबों के सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार, जो निर्णय करने की प्रक्रिया, कार्यसूची, नीति और कार्यक्रम के कार्यान्वयन को प्रभावित करने का आधार हो सकते हैं।

इस तरह, भागीदारी को नागरिकता का उपलक्ष्य मानने पर, नागरिक तो शासन की प्रक्रिया के बाहरी नहीं बल्कि आंतरिक/अभिन्न अंग ही दिखाई देते हैं। नागरिक समाज, बाज़ार में दंभी शक्तिशाली राज्य और पूँजीवाद के/में निरंकुश व्यक्तिवाद के बराबरी के जवाब के रूप में उभर रहा है। इसलिए, पूर्ववर्ती साम्यवाद का अध्ययन कर रहे विद्वान यह वकालत करते हैं कि लोगों में स्व-सहायता संगठनों/प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए कल्याणकारी राज्यों में सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। "सोवियत संघ के टूटने में राज्य की विफलता का संकेत था। शीत युद्ध की समाप्ति के साथ, पूँजीवाद निरंकुश हो गया है, जो एक खतरनाक स्थिति है। नई-पूँजीवादी विश्व व्यवस्था की गतिविधियाँ, जैसे – वैश्विक ग्राम में व्यवसाय प्रक्रम आउट सोर्सिंग (Business Process Outsourcing: BPO), पहले ही विवाद खड़े कर रही हैं। इसलिए, इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए यह ज़रूरी है कि नागरिकगण लोकतंत्र में अंतर्निहित सामाजिक अनुबंध की मूल भावना के अनुसार फिर से अपने अधिकार जताएँ। 1970 के दशक तक, टी. एच. मार्शल के कृतित्व से नागरिकता के विचारों का दिग्दर्शन होता था जिसमें नागरिकता को *कर्त्तव्य* की अपेक्षा राज्य द्वारा सुनिश्चित *अधिकारों* के अर्थ में अधिक समझा जाता था। इसलिए, सरकार को पहले सक्रिय होकर नागरिकों को समान अवसर देना होता था, और इस प्रकार अधिकाधिक भूमिकाएँ निभानी होती थीं। किन्तु सार्वजनिक नौकरशाहियों ने नीति निर्माण और कार्यान्वयन में अधिकांश विशेषाधिकारों को अपने पास रखकर और नागरिकों को विचार-विमर्श से दूर रखकर नागरिकता को गंभीर रूप में संकुचित कर दिया। नागरिकता को कर्त्तव्यों और दायित्वों के संदर्भ में फिर से परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है, जिसके लिए नागरिकों को राष्ट्र-राज्यों में अपनी संप्रभुता को फिर से जताना होगा और सरकार को "प्रदत्त-शक्ति" का इस्तेमाल करते हुए जनहित में कार्य करना होगा (लैण्डी, 1995)।

भारत में, केरल और पश्चिम बंगाल स्थानीय स्तर पर "रूपांतरकारी" (Transformative) विकास के अच्छे उदाहरण हैं। बहरहाल, इसका श्रेय इन राज्यों की साम्यवादी सरकारों की मजबूत सुधारवादी कार्यसूची

को जाता है, जिसमें नमूनागत परिवर्तन को अपनाया गया, जन भागीदारी के तदर्थ प्रयासों को नहीं जो आम तौर पर सफल नहीं होते।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तो भागीदारी शासन की कुँजी है। स्थानीय स्तर पर भागीदारी को संस्था का रूप देने के लिए नियमित चुनावों, परिषद् में सुनवाई और शायद भागीदारी बजट निर्माण को माध्यम बनाया जाता है।

संविधान संशोधन अधिनियम की संकल्पना है कि लोग वार्ड, नगरपालिका, जिला और महानगर क्षेत्रीय स्तर पर भागीदारी करने के योग्य बनें। इस तरह के आशावाद के आनुभाविक साक्ष्य को केवल विद्यमान नगरपालिका अधिनियम में संविधान संशोधन अधिनियम को सम्मिलित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। राज्य स्तर पर वॉर्ड समितियाँ और ग्रामीण स्तर पर ग्राम सभाएँ ही शहरी शासन का तंत्र होती हैं। वॉर्ड समितियों का गठन इस तरह से किया जाता है कि उससे प्रशासन को लोगों के निकट लाया जा सके।

ग्राम सभा का अभिप्राय है ग्रामीण समुदाय को स्थानीय स्तर पर एक प्रकार के प्रत्यक्ष लोकतंत्र में लगाना। प्रशासन में जनभागीदारी की अन्य संस्थाएँ हैं न्याय पंचायतें और लोक अदालतें, जो शासन सम्बन्धी मुद्दों पर लोगों की शिक्षा और त्वरित न्याय के लिए पारंपरिक कानूनी संस्थाओं के पूरक के रूप में खड़ी की गई हैं। कालांतर में इससे अपेक्षा की जाती है कि अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में इससे लोगों में जागरूकता का स्तर बढ़ेगा।

एच. रामचन्द्रन के अनुसार, अभी तक विकास सम्बन्धी जिस कार्यसूची का अनुसरण हुआ है उसके परिणामस्वरूप राज्य की गतिविधियों और शक्तियों में बढ़ोतरी हुई हैं। उसमें नागरिक समाज की भागीदारी के लिए नाममात्र की गुजाइंश/कोशिश की गई है। "सुशासन" के हित में इस स्थिति को बदलने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए सिंचाई अधिनियम में पानी का प्रबंधन और नियंत्रण राज्य के हाथों में दे दिया गया है और परियोजना की योजना बनाना और उसे लागू करना, व्यापक तौर पर, राज्य की आंतरिक गतिविधियाँ हैं। परामर्श और शिकायतों के समाधान के लिए संस्थागत व्यवस्था नहीं होने के कारण विस्थापन, पुनः स्थापन, और पुनर्वास की प्रक्रिया अक्सर गंभीर असंतोष पैदा कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप कहीं-कहीं झगड़े भी हो जाते हैं। यह भारत की ऐतिहासिक स्थिति के विपरीत है, जहाँ जल प्रबंधन जैसे फसली ढाँचे और लघु सिंचाई योजनाएँ – पारंपरिक/ऐतिहासिक तौर पर समुदायों की प्राथमिक ज़िम्मेदारी रही हैं। किन्तु धीरे-धीरे, राज्य ने इन सेवाओं पर एकाधिकार कर लिया। विश्व बैंक (1999) की बात करते हुए, रामचन्द्रन इस व्यवस्था की समस्याओं को इस प्रकार सामने रखते हैं: "*पहला,* पानी मुफ्त दिया जाता है (प्रति व्यक्ति प्रति दिन 40 लिटर तक) और उपयोक्ता उँचे स्तर की सेवाओं से जुड़ी पूँजीगत लागत में योगदान नहीं करते। *दूसरा,* ग्रामीण जल आपूर्ति संस्थापनों का स्वामित्व समुदायों को हस्तांतरित नहीं किया जाता ... समुदायों का नियंत्रण इस पर नहीं होता कि संस्थापन क्या, कब, कहाँ और कैसे उपलब्ध कराए जाते हैं। *अंतिम,* उपयोक्ताओं से जल अभिकरणों को जानकारी देने के तरीके कुविकसित होते हैं, और ऐसे कार्यालयों की संख्या नगण्य होती है जहाँ खराब संस्थापनों की सूचना दी जा सके। आम तौर पर, जल अभिकरण इस सीमित जानकारी पर भी कार्यवाही नहीं करते" (विश्व बैंक, 1999 एच. रामचन्द्रन में उद्धृत)।

शहरी आधारिक संरचना प्रावधान में समुदाय की संलिप्पता के पिछले अनुभव से पता चलता है कि समुदाय की संलिप्तता से किसी भी परियोजना की लागत काफी कम हों जाती है। शहरी आधारिक सेवा कार्यक्रम की शुरुआत केन्द्र सरकार ने यूनीसेफ (UNICEF) की सहायता से की थी। इन परियोजनाओं में कुछ चुनिंदा शहरों में थोड़ी-सी मलिन बस्तियों को ही शामिल किया गया था। विश्व बैंक से क्योंकि कोई संस्थागत अनुबंध नहीं मिला था, इसलिए स्थानीय किस्म के समाधान ही खोजे

गए। योजना विकसित हुई तो यह समझ में आया कि समुदाय की संलिप्तता के परिणामस्वरूप न केवल परियोजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन होता है अपितु संचालन खर्च में काफी कमी भी आ जाती है और उसकी संकल्पना भी बेहतर ढंग से की जा सकती है। उसके बाद, समुदाय को केवल परियोजना के कार्यान्वयन और काम की निगरानी में ही नहीं बल्कि परियोजना का डिजाइन तैयार करने (संकल्पना) में भी लगाया गया। इन तमाम पहलों के बावजूद, सामुदायिक भागीदारी 1970 के दशक के अंतिम चरण तक एक राज्य प्रायोजित गतिविधि ही बनी रही। विकास संबंधी कार्यनीति के एक घटक के रूप में सामुदायिक भागीदारी 1980 के दशक में प्रचालन में आई क्योंकि सार्वजनिक अभिकरण अपेक्षित स्तर की आधारिक सेवाएँ प्रदान करने में बिल्कुल नाकाम रहे। यह देखा गया कि विकास परियोजनाओं में लाभार्थियों के शामिल होने से लागत काफी कम हो गई, क्योंकि इन लोगों ने स्वयं सहायता के माध्यम से संसाधन जुटाने में मदद की और सस्ती दर पर या बिल्कुल मुफ्त मजदूरी भी की। आधारिक संरचनागत परियोजनाओं में सबसे प्रवर्तनकारी किस्म की सामुदायिक भागीदारी मोहल्ला तथा मलिन बस्ती नेटवर्किंग योजना है, जिसे 1990 के दशक की एक बड़ी उपलब्धि कहा गया है और जिसे केन्द्र या राज्य सरकार की प्रचुर वित्तीय सहायता से आरंभ किया गया (कुन्डू 2002)। बहरहाल, तौर-तरीकों के बारे में भ्रम को दूर करने और इस सम्बन्ध में कानूनी प्रावधान उपलब्ध कराने के लिए सामुदायिक भागीदारी को संस्था का रूप देने का प्रयास ज़रूरी है। इसके कुछ आजमाए परखे उदाहरण हैं। सिंचाई परियोजनाओं में जल उपयोक्ता संघ (Water Users Associations), जल विभाजक प्रबंधन में जल विभाजक्र संघ (Watershed Association), वन क्षेत्रों में (JFM) समितियाँ, प्राथमिक शिक्षा में (VEC), अति लघु ऋण में एस एच जी, शहरी क्षेत्रों में पड़ोसी उपयोक्ता समूह (Neighbourhood User Groups: NUG) या आवास कल्याणकारी संघ (Resident Welfare Associations: RWA)। किन्तु इस प्रकार के निकायों को, शायद समितियों के माध्यम से, पंचायत व्यवस्था के दायरे में लाना होगा। सांसदों और विधायकों को दी जाने वाली विकास निधि की अवधारणा, एक और विसंगति है, जिसे पंचायती राज के संदर्भ में दूर करना होगा।

इस समय, लोगों की सक्रियता उभरती दक्षिणपंथी शक्तियों के विरुद्ध देखी जा सकती है। लोगों ने पर्यावरण के लिए खतरनाक उद्योगों को चुनौती दे दी है। लोगों की ऐसी प्रबुद्ध सक्रियता के अनेक उदाहरण हैं। उड़ीसा उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार से कहा है कि वह गोपालपुर में प्रस्तावित टाटा स्टील इकाई अथवा इस्पात संयंत्र के लिए गाँव के निवासियों को वहाँ से न निकाले। यह आदेश ग्राम पंचायत के अध्यक्ष और पी यू सी एल की उड़ीसा इकाई की याचिकाओं के बाद आया। हिमाचल प्रदेश की एक ग्राम पंचायत ने उसके इलाके में गोल्फ कोर्स के निजीकरण के राज्य सरकार के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर करने का निर्णय किया है। उपर्युक्त उदाहरणों को देखते हुए, स्थानीय जनसंख्या की ज़वाबदेही लगाते हुए भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का सही उपाय सूचना का अधिकार प्रतीत होता है (एच. रामचन्द्रन)।

20.6 स्थानीय निकायों के संसाधन

अध्ययनों से पता चलता है कि महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे अपेक्षाकृत सम्पन्न राज्यों के स्थानीय निकाय भी अपने कराधान के अधिकार का इस्तेमाल करने में विफल रहे हैं। उन्होंने व्यवसाय कर सहित उपलब्ध मदों में से शायद दो पर कर लगाया है जिनमें भूमि और भवनों पर, विशेषकर और सार्वजनिक मनोरंजन पर कर। उपयोक्ता शुल्क भी अपर्याप्त रूप में लगाए गए तथा और भी अनुचित ढंग से उगाहे गए हैं। इसे राज्य सरकारों की खराब संसाधन स्थिति में मिला कर देखें तो स्थानीय निकायों में संसाधनों की कमी का कारण काफी हद तक स्पष्ट हो जाता है। अशोक मेहता समिति की टिप्पणियों की बात करते हुए, वाजपेयी और वर्मा (1995) स्पष्ट करते हैं कि पंचायत के आकार और एक आर्थिक इकाई के रूप में इसकी उपादेयता के बीच युक्तिपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए। इस समय ऐसा नहीं है।

ग्रामीण स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति

संविधान का अनुच्छेद 243-एच में राज्य विधायिका को निर्देश है कि वह :

क) एक पंचायत को अधिकृत करें कि वह ऐसी प्रक्रियाओं के अनुसार और ऐसी सीमाओं के अधीन ऐसे कर, शुल्क (डयूटी), चुंगी और शुल्क लगाए, जमा करे और विनियोजित करे;

ख) ऐसे उद्देश्यों के लिए और ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन राज्य सरकार द्वारा लगाए और जमा किए गए ऐसे करों, शुल्कों (डयूटियों), चुगिंयों और शुल्कों को पंचायतों को सौंपें;

ग) पंचायतों को राज्य की समेकित निधि से इस प्रकार के सहायता अनुदान की व्यवस्था करें; और

घ) पंचायतों द्वारा अथवा उनकी ओर से समस्त धन को जमा करने के लिए और कानून में निर्दिष्टानुसार वहाँ से इस तरह के धन को निकालने के लिए इस तरह की निधियों के गठन की व्यवस्था करें।

यह स्पष्ट है कि स्थानीय निकायों के पास संसाधन जुटाने के अपने स्वतंत्र अधिकार नहीं हैं। राज्य सरकारों को स्थानीय स्तर पर वित्तीय आवश्यकताओं का प्रबंध करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई हैं। इस सम्बन्ध में और भी अधिक कदम उठाने की आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि स्थानीय निकाय अपने स्वयं के संसाधन जुटाएँ। इस सम्बन्ध में कुछ करों और उपयोक्ता शुल्कों को अनिवार्य बनाने के अर्थ में राज्य सरकार की पर्यवेक्षकीय भूमिका निर्णायक होती है। सहायता को सुधार और संसाधन जुटाव के प्रयास से जोड़ना कारगर हो सकता है।

नगरपालिका वित्त

अभिजीत दत्त (2005) के अनुसार, भारतीय राज्यों के विपरीत, स्थानीय (नगरपालिका समेत) सरकारें केन्द्र सरकार के राजस्वों में हिस्सेदारी नहीं करतीं। बहरहाल, यह व्यवस्था ब्राजील, नाइजीरिया और दक्षिण अफ्रीका जैसे संघीय संविधानों में बहुत आम है। ब्राजील और नाइजीरिया में स्थानीय शासनों का संघीय राजस्व में एक नियत हिस्सा होता है, जबकि दक्षिण अफ्रीका में वित्तीय एवं राजकोषीय आयोग इसे उप-राष्ट्रीय शासनों को, उनकी राजस्व सामर्थ्य और राजस्व जुटाने के प्रयास की जाँच करने के बाद आबंटित कर देता है। दक्षिण सरकार का संविधान इसे "सरकार के राष्ट्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय क्षेत्रों के बीच राष्ट्रीय स्तर पर उगाहे गए राजस्व का साम्यिक विभाजन" करता है।

भारत में क्योंकि राज्यों द्वारा केन्द्रीय राजस्व में साझेदारी की प्रथा है, इसलिए नगरपालिकाओं को वित्त के लिए नगदी-विपन्न राज्य सरकारों पर निर्भर रहना होता है। इसके अतिरिक्त, "वैश्विक कर साझेदारी" की जो व्यवस्था है जिसमें निधियाँ राज्य वित्त आयोग की सिफारिश पर राज्यों से नगरपालिकाओं को हस्तांतरित की जाती हैं, उस व्यवस्था ने विशेषकर पूर्ववर्ती महसूल (ऑक्ट्राय) राज्यों की कर साझेदारी और कर भरपाई के अंतर को अस्पष्ट कर दिया है। यह दो करों – मोटर वाहन कर और महसूल भरपाई के लिए महत्त्वपूर्ण है। वाहन करों को उचित नगरीय (म्युनिसिपल) स्रोत माना जाता है क्योंकि सड़कों के रखरखाव, सड़कों के फर्नीचर और प्रकाश व्यवस्था की ज़िम्मेदारी नगरपालिका की होती है। महसूल भरपाई को एक नगरपालिका व्यापार कर की अनुपस्थिति में व्यापक संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। वैट (वी.ए.टी.) लागू होने के बाद, नगरपालिकाओं के लिए नियत प्रतिशत आबंटन पर विचार होना चाहिए। अभिजीत दत्त (2005) के अनुसार, "भविष्य में, नगरपालिकाओं के साथ वैश्विक राज्य राजस्व की साझेदारी का स्थान वाहन कर और वैट ले सकते हैं। नगरपालिका निकाय (निगमों और परिषदों) को विविध प्रकार के (अनिवार्य और स्वनिर्णयगत) कार्य सौंपे गए हैं जिनके लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध होने चाहिए। यदि स्थानीय निकायों को अनुदानों को राजकोषीय कुशलता के साथ जोड़ने जैसे उपायों के माध्यम से राजस्व की उगाही और खर्च सम्बन्धी

निर्णयों में आवश्यक स्वायत्तता दे दी जाए, राज्य भी नगरीय वित्त पर बेहतर बंदिश लगाने में समर्थ होगा।

इस तरह, नगरपालिका निकायों के लिए अलग से करों की कोई सूची नहीं है। नगरपालिका वित्त की जाँच के लिए समय-समय पर स्थानीय वित्त जाँच समिति (1951) और कराधान जाँच आयोग (1953-1954) जैसे अनेक आयोग गठित किए गए हैं। किन्तु नगरपालिका वित्त को सम्बन्धित राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया गया था कि वे कर लगाने से सम्बन्धित मामलों को कानून द्वारा निर्दिष्ट करें। प्रयोक्ता शुल्क उचित ढंग से नहीं लगाए गए हैं। बहुत कम शुल्क बस दिखावे के तौर पर लिए गए हैं।

नगरपालिका के वित्तों को लेकर यही रोना रहा है।

नगरपालिका राजस्व मुख्य रूप में इस प्रकार हैं :

- कर राजस्व;
- ग़ैर-कर अथवा कर-इतर राजस्व;
- सहायता अनुदान; और
- उधारी अथवा ऋण।

क) **कर राजस्व**

शहरी स्थानीय सरकार द्वारा लगाए प्रमुख कर इस प्रकार हैं :

- सम्पत्ति पर कर, जिसमें जल-आपूर्ति, सफाई, जल निकास, प्रकाश व्यवस्था और कचरा निपटान के लिए सेवा कर शामिल हैं;
- उपभोग अथवा बिक्री के लिए एक स्थानीय क्षेत्र में वस्तुओं के प्रवेश पर लगने वाला कर, जिसे महसूल कहते हैं;
- व्यवसायों पर कर; और
- वाहनों पर कर (मोटर वाहनों के अतिरिक्त)।

नगर निगमों के कराधान का प्रभाव क्षेत्र अधिक व्यापक होता है; उनके पास आम तौर पर राज्य के अधिनियमों में निर्धारित सीमाओं के भीतर कर लगाने अथवा बढ़ाने का अधिकार होता है।

सम्पत्ति कर

आम तौर पर जिन राज्यों में महसूल का कोई प्रावधान नहीं होता है, वहाँ नगरपालिका निकायों के लिए राजस्व का एकमात्र सबसे बड़ा स्रोत सम्पत्ति कर ही होता है। सम्पत्ति कर भूमि और भवनों पर लगाया जाता है। इसके कराधान का आधार वार्षिक करयोग्य मूल्य होता है जो राजकोषीय स्तर पर अवरुद्ध होता है और अनुचित ढंग से कार्यान्वित भी होता है। कर को तरणशील बनाने के लिए, क्षेत्रवार आकलन अथवा पूँजीगत मूल्य आकलन पर आधारित अभिकलन के वैकल्पिक तरीकों के इस्तेमाल का प्रयास करना चाहिए। कोई नगरपालिका निकाय एक विशेष बैठक में पारित और राज्य सरकार द्वारा पुष्ट प्रस्ताव के द्वारा कर लगा सकता है, उसे निलंबित, कम अथवा समाप्त कर सकता है, अथवा किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के वर्ग को किसी सम्पत्ति अथवा सम्पत्ति के विवरण पर ऐसे कर को आंशिक/पूरे तौर पर माफ कर सकता है। सम्पत्ति कर में सुधार की आवश्यकता है (दसवीं पंचवर्षीय

योजना, 2002-07)। अभिजीत दत्त (2005) के अनुसार, सम्पत्ति कर सम्बन्धी समस्याओं की मुख्य जड़ शहरी विकास सम्बन्धी राज्यों की नीति है, जैसे दण्डात्मक कराधान (स्टाम्प शुल्क, भूमि मूल्य वृद्धि कर), किराया नियंत्रण, स्वामित्व विसर्जन (भूमि सीलिंग) और शहरी भूमि उपयोग (परिवर्तन कर) में हस्तक्षेप, जिनके परिणामस्वरूप संपत्ति बाजार में काला धन आया है। सम्पत्ति कर सम्बन्धी वांछनीय स्थिति, "एक अपेक्षाकृत मुक्त सम्पत्ति बाज़ार में इसके उपयोग में नगरपालिका की स्वायत्तता है।" अन्य मुख्य सुधारों में शामिल हैं: सम्पत्ति कर संग्रह के लिए ई-गवर्नेन्स का इस्तेमाल शुरु करना जिसका लक्ष्य पाँच वर्षों के भीतर कम से कम 85 प्रतिशत संग्रह क्षमता हो, और वित्तीय लेखा प्रणाली, कार्य प्रबंधन, जल कर की बिलिंग और वसूली प्रणाली, व्यापार लाइसेंस प्रणाली और भवन निर्माण योजनाओं की स्वीकृति के मामले में भी ऐसा ही प्रयोग करना।

महसूल

यह उपभोग अथवा बिक्री के लिए एक स्थानीय क्षेत्र में वस्तुओं के प्रवेश पर लगने वाला कर है। जहाँ यह कर लगाया जाता है, वहाँ शहरी स्थानीय निकायों को इससे कुल राजस्व का लगभग 60 से 80 प्रतिशत प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में यह कर राजस्व का प्रमुख स्रोत है। बहरहाल, अनेक स्रोतों से कटु आलोचना होने के कारण – आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, नागालैण्ड, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और मेघालय जैसे राज्यों ने महसूल को समाप्त कर दिया है। गुजरात राज्य ने एक नीतिगत निर्णय करते हुए महसूल को समाप्त करके प्रवेश कर लगा दिया है। महसूल की आलोचना इस बात को लेकर भी थी कि इससे अंतर-राज्यीय व्यापार बाधित होता था और इसके कार्यान्वयन में बहुत भ्रष्टाचार था।

ख) ग़ैर-कर राजस्व

लाइसेंस के लिए प्रत्येक नगरपालिका अधिनियम में प्रावधान होते हैं। प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण को नियामक (जारी किए गए लाइसेंस के लिए) तथा प्रदत्त सेवाओं के लिए भी शुल्क लगाने और वसूलने का अधिकार है। कर और शुल्क में काफी अंतर होता है: कर अनिवार्य तौर पर लगाया जाता है जबकि शुल्क "दूसरी वस्तु के समान दी या ली गई कोई वस्तु" के सिद्धान्त के आधार पर किसी प्राप्त लाभ के एवज में लिया जाता है। जब सेवा का प्रयोग व्यापक होता है और यह एक सार्वजनिक उपयोग का रूप और चरित्र ग्रहण कर लेता है, तब लिए जाने वाले शुल्क को उपयोक्ता शुल्क कहा जाता है। आम तौर पर उपयोगता शुल्क सार्वजनिक उपयोगिताओं, पार्किंग, खेल के मैदान, तरणताल में प्रवेश आदि के रूप में वसूला जाता है।

जैसा कि दसवीं पंचवर्षीय योजना में स्पष्ट कहा गया है, कि राज्य सरकारें उपर्युक्त करों की दर तय करती हैं, और जल और बिजली आपूर्ति के मामले में सम्बन्धित पैरास्टेटल अभिकरण और इसमें स्थानीय निकायों का कोई उल्लेख नहीं होता जो इन निर्णयों से प्रभावित होते हैं। इस सम्बन्ध में निर्णय करने के अधिकार का प्रभावी हस्तांतरण नहीं होता है। इस संकोच या बाधा का उचित समाधान होना चाहिए। उपयोक्ता शुल्क भी अपर्याप्त हैं। उपयोक्ता शुल्कों के संशोधन की और उनके कठोरता से पालन करने की आवश्यकता है, तभी स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति बेहतर होगी। इसके अतिरिक्त लागतों विशेषकर स्थापना लागतों पर बेहतर नियंत्रण होना चाहिए और बेहतर वित्तीय स्थिति के लिए नगरपालिका परिसम्पत्तियों के बेहतर उपयोग को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

ग) सहायक अनुदान

नगरपालिका वित्त का एक महत्त्वपूर्ण घटक सहायता अनुदान है। अनुदान दो प्रकार के होते हैं : एक सामान्य उद्देश्यीय अनुदान (GPG) और विशिष्ट उद्देश्यीय अनुदान (SPG)। सामान्य उद्देश्यीय अनुदान का अभिप्राय स्थानीय निकायों के राजस्व को बढ़ाना होता है जिससे वे अपने सामान्य कार्य कर सकें।

विशिष्ट उद्देश्यीय अनुदान का उपयोग विशेष आवश्यकताओं के लिए होता है, जैसे मुद्रा स्फीति के कारण वेतन भुगतानों में बढ़ोतरी, शिक्षा अनुदान, जन स्वास्थ्य, सड़कों का रखरखाव आदि। अनुदान तदर्थ और विवेकाधीन किस्म के होते हैं। केन्द्रीय योजना सहायता कुछ योजनाओं के माध्यम से दी जाती है, जैसे समाकलित लघु और मध्यम नगर विकास (ISDMT), त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम (AUWSP), और मेगा शहरी योजना। योजना सहायता (NCR) योजना और कर मुक्त बाण्ड्स योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से भी दी जाती है जिसे नौवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में लागू किया गया था। बाह्य सहायता एशियाई विकास बैंक (ADB), विश्व बैंक जैसे संगठनों और अन्य द्विपक्षीय अभिकरणों जैसे अभिकरणों से आती है। आधारिक संरचनागत विकास में विशेषकर आवास में निजी क्षेत्रक के साथ भागीदारियों पर विचार किया जाना चाहिए।

घ) **उधारी और ऋण**

जब नगरपालिका के निकाय अपने विद्यमान राजस्वों से अपने खर्च वहन नहीं कर पाते, उस स्थिति में वे राज्य सरकार और अन्य अभिकरणों से उधार ले सकते हैं। एक स्थानीय शासन की उधारी की सामर्थ्य स्थानीय प्राधिकरण ऋण अधिनियम (1914) के अधीन नियंत्रित होती है। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि नगर निगम तो विकास की गतिविधियों के लिए और ऋण प्रभार की अदायगी के लिए उधार ले सकते हैं। स्थानीय निकायों को निम्नलिखित गतिविधियों के लिए ऋण लेने की अनुमति है :

- नगरीय कार्यों के लिए निर्माण;
- अकाल या अभाव के समय राहत कार्य की स्थापना अथवा रखरखाव अथवा राहत का प्रावधान;
- किसी खतरनाक महामारी को फैलने से रोकना;
- भूमि अधिग्रहण; और
- बकाया ऋण की अदायगी।

यद्यपि बाज़ार की उधारियाँ नगरीय वित्त के पारंपरिक स्रोत नहीं हैं फिर भी जल आपूर्ति जैसे विशिष्ट क्षेत्रकों की आरम्भिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण निधियों का उपयोग सहायता अनुदान से जुटने वाले संसाधनों तथा अपने संसाधन के पूरक के रूप में किया जा सकता है।

राज्य वित्त आयोग

शहरीकरण की बढ़ती रफ्तार के चलते नगरपालिका निकायों के लिए अपेक्षित स्तर की सेवाएँ देना कठिन हो रहा है। यही नहीं, संविधान संशोधन अधिनियम (1992) और बारहवीं अनुसूची में अठारह प्रकार्य जुड़ जाने से, नगरपालिकाओं की कार्यात्मक ज़िम्मेदारियों का विस्तार विकास की योजना बनाने तक हो गया है जिसमें स्थानीय कार्यों का क्षेत्र नागरिक सुख-सुविधाएँ प्रदान करने से बहुत आगे फैल गया है। स्थानीय निकायों से अपेक्षित है कि वे स्थानीय विकास के लिए योजनाओं की तैयारी में और विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगें। इसे देखते हुए, नगरपालिका निकायों के संसाधनों का समुचित आकलन ज़रूरी हो जाता है। इस प्रकार 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 243-I में राज्य वित्त निगम के गठन का प्रस्ताव है। राज्य का राज्यपाल, संविधान संशोधन अधिनियम के प्रारंभ होने के एक वर्ष के अंदर एक राज्य वित्त आयोग का गठन करता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। राज्य वित्त आयोग की सिफारिशें निम्नलिखित संदर्भों में होंगी:

- राज्य सरकार और नगरपालिकाओं के बीच राज्य द्वारा लगाए गए करों, ड्यूटियों अथवा शुल्कों से होने वाली कुल आय का बँटवारा;
- राज्य में सभी स्तरों पर नगरपालिकाओं के बीच ऐसी आय के एक हिस्से का आबंटन;
- नगरपालिकाओं द्वारा सौंपे अथवा वसूले जाने वाले करों, ड्यूटियों अथवा शुल्कों का निर्धारण;
- राज्य की समेकित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान; और
- नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक उपाय।

नए संशोधन के अनुसार, राज्यपाल किसी मामले को अपने विवेक का प्रयोग करते हुए वित्त आयोग को भेज सकता है। यह आयोग राज्य के कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियों के दायरे में अपनी प्रविधि तैयार कर सकता है। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि राज्यपाल को वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश, और उसके साथ की गई कार्यवाही पर व्याख्यात्मक टिप्पणियों को राज्य की विधायिका के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा प्रस्तावित वित्त निगम के गठन से इस प्रकार स्थानीय निकायों को उन सेवाओं को संवर्धित स्तर देने में मदद मिलती है जिनकी ज़रूरत बढ़ते शहरीकरण के संदर्भ में है। बारहवीं अनुसूची के अंतर्गत उन्हें दी गई इन अतिरिक्त ज़िम्मेदारियों के कारण भी यह ज़रूरी हो जाता है कि स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों का नियमित आकलन किया जाए। वित्तीय संसाधनों के नियमित आकलन से संसाधनों के उचित वितरण में, राज्य से स्थानीय शासन को संसाधनों के हस्तांतरण में और स्थानीय निकायों को एक मजबूत आधार देने में मदद मिलती है।

राज्य वित्त आयोग के सामने ग्रामीण और शहरी सरोकारों में संतुलन बैठाने की चुनौती हो सकती है, और ग्रामीण सरोकारों की ओर झुकाव की प्रवृत्ति भी हो सकती है। एक और सरोकार हो सकता है: अपने संसाधनों और राज्य से होने वाले हस्तांतरणों के सही मिश्रण का (दसवीं योजना)। इसके अतिरिक्त, राज्य वित्त आयोग की सदस्यता भी महत्त्वपूर्ण हो सकती है। इसकी प्रभावशीलता इसके सदस्यों की विशेषज्ञता पर निर्भर करेगी। विभिन्न राज्यों के अधिनियमों का अध्ययन करने से यही पता चलता है।

बजट निर्माण के मुद्दे

जहाँ उपयोक्ता शुल्कों में बढ़ोतरी की व्यापक सिफारिश हो रही है, वहीं इसके विरोध में दिया जाना वाला तर्क भी उतना ही मजबूत है। बढ़े हुए उपयोक्ता शुल्कों से शहर में रहने वाले वंचितों पर और भी अधिक बोझ पड़ जाएगा, क्योंकि उनसे और अधिक पैसे अथवा भुगतान करने के बारे में कहा जाएगा। बहरहाल, क्योंकि यह स्थानीय निकायों को स्व-शासन की लाभकारी इकाइयाँ बनाने के लिए ज़रूरी है, इसलिए नीति संकल्पना में नुकसान में रहने वालों की पहचान करने, और बेहतर वास्तविक समाज कल्याण के लिए पर्याप्त भरपाई करने के तरीके ढूँढ़ने होंगे। यही नहीं, बजट प्रक्रिया में और अधिक जन भागीदारी को आमंत्रित करना होगा, जिससे यह पता लगाया जा सके कि ज़रूरतें क्या हैं, और वर्तमान व्यवस्था में उनकी पूर्ति हो रही है या नहीं। उदाहरण के लिए, स्थानीय शासनों को सबसे पहले गरीबी से निपटना होगा क्योंकि वे प्रशासन और नागरिकों के बीच काम करते हैं। प्रवासी मजदूरों, एड्स से पीड़ित व्यक्तियों, सड़क छाप भिखारियों, बेघर लोगों, बाल श्रमिकों और ऐसे ही अन्य कमजोर तबकों की ज़रूरतों को स्थानीय स्तर पर पूरा करना होगा। *युवा* से संबद्ध मीनार पिम्पल (Minar Pimple), और सार्वजनिक मामलों के केन्द्र (Public Affairs Centre), बंगलौर, से संबद्ध सीता शेखर के अनुसार विभिन्न स्थानीय शासनों के विभिन्न जनसंख्यात्मक और व्यावसायिक स्वरूप, गरीबी और बेरोज़गारी की प्रकृति आदि भिन्न होती है। इसलिए, हर जगह एक-सी व्यवस्था करना उचित नहीं

हो सकता। नगरपालिकाओं के बीच व्यय और राजस्व के संवर्धन और गठन के मामले में व्यापक अंतर देखे गए हैं। जहाँ बंगलौर में आय की वृद्धि मात्र 1 प्रतिशत थी, मुम्बई में यही 7 प्रतिशत थी। चैन्नई में जहाँ शिक्षा पर 36 प्रतिशत खर्च किया गया वहीं पुणे में यह मात्र 8 प्रतिशत था। परिचालन व्यय बजट का 6 से 14 प्रतिशत था और प्रति व्यक्ति आय चैन्नई के मुकाबले में मुम्बई में तीन गुणा से अधिक थी। क्षेत्रकों के भीतर आबंटन के मामले में अहमदाबाद में शिक्षा क्षेत्रक में वेतन केवल 5 प्रतिशत रहा, जबकि बंगलौर में यहीं अविश्वसनीय 97 प्रतिशत था। शोध अध्ययनों अथवा नीति विश्लेषणों को लें, तो यहाँ नागरिक समाज की सक्रियता प्रासंगिक हो जाती है।

इसलिए बजट में संसाधनों के युक्तिपूर्ण आबंटन के लिए प्रत्येक स्थानीय शासन से संबंधित गहन सैद्धान्तिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। माँग है, समावेशी बजट प्रक्रिया की जिसमें नागरिक समाज में विषय विशेषज्ञों की अपेक्षित संलिप्तता हो।

20.7 भविष्य की कार्यसूची

भारत में वर्तमान संविधान संशोधन अधिनियम, शहरी स्थानीय निकायों के विद्यमान ढाँचे में बदलाव लाने की ओर बढ़ाया गया एक कदम है और यह राजनीतिक प्रक्रिया के बहुलवाद और समावेशिता की विश्वव्यापी प्रवृत्ति के अनुरूप है। अपेक्षा की जाती है कि, सच्चे अर्थ में लोकतांत्रिक ढंग की सरकार, और शहरी स्थानीय निकायों को सक्षम बनाकर यह बदलाव के संदेशवाहक की भूमिका निभाएगा।

शहरी स्थानीय निकायों के लिए ज़रूरी सुधार नानाविध हैं, जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय पहलू आ जाते हैं। अधिनियम में नगरीय निकायों के लिए शासनादेश और संरचना के एक संवैधानिक रूप का प्रावधान है, जिससे उनके लिए स्थानीय स्व-शासन की प्रभावी लोकतांत्रिक संस्थाओं के तौर पर कार्य करना सुगम हो जाता है। बहरहाल, यहाँ उल्लेखनीय है कि नगरीय निकायों को लोकतंत्र की उत्फुल्ल और प्रभावी संस्थाएँ बनाने के लिए अकेले सांविधानिक दर्जा ही काफी नहीं है। राज्यों से स्थानीय निकायों को ज़िम्मेदारियों का सच्चे अर्थ में हस्तांतरण करना होगा, और उसके साथ, विशेषकर वित्तीय संसाधनों के मामले में, शक्ति और अधिकार का भी अपेक्षित हस्तांतरण करना होगा।

जैसा कि दसवीं योजना में स्पष्ट कहा गया है, स्थानीय निकायों की वांछित भूमिका इस प्रकार होगी :

- समुदाय के प्रति अनुक्रियाशील और ज़वाबदेह होना;
- ऐसे शहर विकसित करना जिनमें सेवाओं का स्तर उस विशेष श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ हो; और
- अपनी योग्यताओं में लगातार सुधार करना, जिससे वे संसाधन जुटाव, सेवा प्रावधान और गरीबी उन्मूलन के अपने कामों को संपन्न करने में सक्षम हो जाएँ।

पाँच चुनिंदा शहरों में मेगासिटी परियोजना जैसी परियोजनाओं के माध्यम से इस दिशा में पहले ही काफी प्रगति की जा चुकी है। लघु और मध्यम नगरों का समेकित विकास (ISDMT), और त्वरित जल आपूर्ति कार्यक्रम (AUWSP) ने काफी सफलतापूर्वक कार्य किया है।

नगरपालिका मामलों में सूचना के अधिकार के माध्यम से पारदर्शिता की भी आवश्यकता है, क्योंकि ये निकाय करदाता के पैसे के अधिक निकट होते हैं। निवासी संघ जैसे निकायों को शहरी योजना निर्माण में अधिक निकटता से संलिप्त करके जन भागीदारी प्राप्त की जा सकती है। ज़वाबदेही तंत्र ऐसे मुख्य कार्य क्षेत्र हैं जिनमें निजी क्षेत्रक सरकारी क्षेत्रकों से आगे हैं, जो कथित तौर पर लोक प्रशासन में, विशेषकर भारत में, निराशाजनक स्तर पर अपर्याप्त हैं और निजी उद्यमों में अत्यंत सक्षम हैं। प्रविधि संबंधी सुधार का यह एक क्षेत्र है, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। शहरी स्थानीय निकाय तो

कर संग्रह में गिरावट और बर्बादी के दोषी रहे हैं। लोकभय से, वे कर और उपयोक्ता शुल्क लगाने से बचते रहे हैं।

इसके लिए बुनियादी ज़रूरत होगी केन्द्रीकृत योजना निर्माण से, निचले स्तर से विकास योजना निर्माण की ओर संक्रमण की, जो तभी संभव होगा जब स्थानीय निकायों को शक्तियों और कार्यों का सचमुच हस्तांतरण किया जाए और स्थानीय निकायों में संसाधन की योग्यता निर्मित की जाए।

20.8 सारांश

इस तरह, स्थानीय शासन में सक्षमता लाने के लिए मौलिक बदलावों की ज़रूरत है। हालाँकि हाल के संविधान संशोधन इस दिशा में बढ़ाया गया एक कदम है। फिर भी सचमुच संघीय व्यवस्था की ओर किए जाने वाले संरचनात्मक सुधारों की अभी भी ज़रूरत है। वर्तमान व्यवस्था में औपनिवेशिक तेवर बरकरार है। संविधान में निहित मौलिक कर्त्तव्यों की भावना के अनुसार, नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य है। उसे संस्था का रूप देना भी ज़रूरी है। विशेषकर वित्त के मामले में, शक्तियों और कार्यों का प्रभावी हस्तांतरण करने की आवश्यकता है। शहरी स्थानीय निकायों को अब महत्त्वहीन कार्य करने वाले, राज्य सरकारों के, माध्यमों के रूप में नहीं बल्कि योजना निर्माण की इकाइयों के रूप में देखा जाना चाहिए।

20.9 मुख्य अवधारणाएँ

निजीकरण (Privatisation) : निजीकरण में अनेक नीतियाँ शामिल हैं, जैसे सेवाओं का कम सार्वजनिक वित्त पोषण, अलाभकारी संगठनों के साथ और लाभकारी संगठनों के लिए सरकारी अनुबंधन, सेवाओं के लिए शुल्क, सार्वजनिक शिक्षा के लिए वाउचर और सार्वजनिक सरोकारों के समाधान में सामुदायिक संगठनों के लिए और बड़ी भूमिका (इंग्राम और स्मिथ, 1995)।

नागरिक समाज (Civil Society) : नागरिक समाज वैश्वीकृत दुनिया की नई आशा है। नागरिक समाज हमें निरंकुश पूँजीवाद और सर्वशक्तिशाली राज्य की बुराई से बचाएगा। नागरिक समाज में ग़ैर-सरकारी संगठनों और सामाजिक कार्यसमूहों, और सामाजिक लाभ के लिए एक व्यक्ति की स्वैच्छिक गतिविधि भी शामिल होती है। नागरिक समाज का कार्य क्षेत्र तो राज्य और बाजार के बीच का स्थान है, जिसमें कभी-कभी साहचर्य और सुविधाजनक संगति के साथ सरकारी और बाजारी अभिकरण भी शामिल होते हैं (अंग्रेजी में : सिविल सोसाइटी)

भागीदारी (Participation) : भागीदारी को विकास के रूपांतरकारी दृष्टिकोण के रूप में देखा जा रहा है। इसका अध्ययन नागरिकता के व्यापकतर विश्लेषण के एक अंश के रूप में किया जा रहा है, जो शासन में वैध अधिकार और कर्त्तव्य के संदर्भ में शामिल होता है। इसके अनुसार, लोकतंत्र की इस आधारिक धारणा को संस्था का रूप देने के लिए कल्याणकारी राज्यों को सार्वजनिक सेवाओं का पुनर्गठन करने की ज़रूरत है। भागीदारी पर अधिकाधिक चर्चा जिन प्रमुख उपक्षेत्रों में हो रही है, वे हैं :

विकेन्द्रीकरण, सामाजिक पूँजी, सामाजिक आंदोलन, सामाजिक न्याय के मुद्दे जैसे महिलाओं का सशक्तिकरणं आदि (विश्व बैंक के प्रकाशनों में)।

नगरीय : नगरपालिकाओं अथवा निकायों से संबंधित।

20.10 संदर्भ व अन्य लेख

वाजपेयी और वर्मा, 1995, *पंचायती राज इन इंडिया : ए न्यू थ्रस्ट,* साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, भारत।

ब्लैकबर्न, जे. एवं जे. हालैण्ड, 1998, *हू चेन्जस : इस्टीट्यूनलाइजिंग पार्टिसिपेशन इन डेवलपमेंट,* इंटरमीडिएट टैक्नोलॉजी पब्लिकेशन्स, लंदन।

दत्ता, अभिजीत, 2005, "म्युनसिपिल गवर्नेंस इन इंडिया इन दी 21स्ट सैंचुरी", पी. एस. एन. राव (संपा.) *अर्बन गवर्नेंस एंड मैनेजमेंट, इंडियन इन्हीशिएटिव्स,* भारतीय लोक प्रशासन संस्थान और कनिष्का पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स के सहयोग, नई दिल्ली।

दत्ता, देवप्रिया, 2004, "ए फ्रेमवर्क फॉर टैक्नोलॉजिकल एंड आर्गनाइजेशनल कैपसिटी बिल्डिंग फॉर लोकल लेवल प्लानिंग इन इंडिया", प्राकृतिक संसाधन आँकड़ा प्रबंधन प्रणाली विभाग, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, जियो स्पेटल डाटा इंफ्रास्ट्रक्चर, सातवाँ सम्मेलन, फरवरी 2-6, बंगलौर, भारत।

फाहीम, मेयराज, "लोकल गवर्नमेंट इन इंडियाः लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया स्टिल केरिज करैक्टरस्टिक्स ऑफ इट्स कॉलोनियल हैरिटेज", वेबसाइट http://www.citymayors/com/ index.html पर ऑन लाइन पढ़ें।

जवेंता जे. एवं सी. वल्दरमा, 1999, पार्टीसिपेशन, सिटीजनशिप और लोक गवर्नेंस, बैकग्राउण्ड पेपर ऑन सट्रेन्थनिंग पार्टीसिपेशन इन लोकल गवर्नेंस हिक्की, सेम एवं मोहन जाइल्स, 2003, "रिलोकेटिंग पार्टीसिपेशन विदइन ए रेडिकल पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपमेंटः सिटीजनशिप एण्ड क्रिटीकल माडर्ननिज्म", कांफ्रेस ऑन पार्टीसिपेशन : फ्रोम टाइरनी टू ट्रासफॉर्मेशन? एक्सप्लोरिंग न्यू एप्रोचस टू पार्टीसिपेशन इन डेवलपेमेंट, सम्मेलन हेतु तैयार किया गया ड्राफ्ट वर्किंग पेपर।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07, अध्याय 6.1, "अर्बन डेवलपमेंट"।

भारत सरकार, *इकॉनामिक सर्वे,* 2004-05, अध्याय 9, "अर्बन इंफ्रास्टक्वर"।

हिक्की, सेम एवं मोहन जाइल्स, 2003, "रिलोकेटिंग पार्टीसिपेशन विदइन ए रेडिकल पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपमेंटः सिटीजनशिप एण्ड क्रिटीकल माडर्ननिज्म", कांफ्रेस ऑन पार्टीसिपेशन : फ्रोम टाइरनी टू ट्रासफॉर्मेशन? एक्सप्लोरिंग न्यू एप्रोचस टू पार्टीसिपेशन इन डेवलपेमेंट, सम्मेलन हेतु तैयार किया ड्राफ्ट वर्किंग पेपर।

"इंस्टीट्यूनशनलाइजिंग डिसेंट्रलाइज्ड इंफोर्मेशन सिस्टम्स फॉर लोकल लेवल प्लानिंग : कम्पेरिंग एप्रोचस अक्रॉस टू स्टेटस इन इंडिया", *जर्नल ऑफ ग्लोबल इंफोर्मेसशन टैक्नोलॉजी मैनेजमेंट,* खण्ड 3, संख्या 4, 2000।

लैण्डी, मेरक, 1995, "पब्लिक पॉलिसी एंड सिटीजनशिप", इंग्राम हेलन एंड स्टीवीन, रथगेव स्मिथ (संपा.), *पब्लिक पॉलिसी फॉर डेमोक्रेसी,* फ्रैंक ब्रदर्स एंड कम्पनी।

पिप्पल मिनर, *युवा,* सीता शेखर, सार्वजनिक मामलों के केन्द्र (Public Affairs Centre) बंगलौर, "म्युनिसिपल बजट्स एंड अर्बनाइजेशन", वेबसाइट http://www.internationalbudget.org/cdrom/sessions/expenditure/urban.htm#urbanization पर ऑन लाइन पढ़ें।

रामचन्द्रन एच, "गवर्नेंस एंड पीपल्स पार्टीसिपेशन विजन 2020", एच टी एम एल डाक्यूमेंट।

रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन, 1961, सहभागिता और ग्रामीण विकास विभाग, महाराष्ट्र सरकार।

तिवारी, डी. पी., 2005, "चैलेंजस इन अर्बन प्लानिंग फॉर लोकल बोडिज इन इंडिया", आई ए एस, आयुक्त और निदेशक, शहर और देश योजना, भोपाल, मध्यप्रदेश वेबसाइट http://www.GISdevelopment.net पर ऑन लाइन पढ़ें।

वेबस्टर एन. एवं एल. एंगबर्ग पीडरसन, 2002, *इन दी नेम ऑफ दी पूअरः कन्टेस्टिंग पॉलिटिकल स्पेस फॉर पावर्टी रिडक्शन,* जेड बुक्स।

20.11 अभ्यास

अपने क्षेत्र में नगरपालिका के कार्य की एक आकलन रिपोर्ट तैयार कीजिए। आपके विचार में, प्रस्तावित संशोधन किस हद तक स्थिति में सुधार कर पाएँगे? स्थानीय निकायों की शक्तियों, कार्यों और संसाधनों के संदर्भ में अपना उत्तर दीजिए।

परिशिष्ट

भारतीय संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची, 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1993

1) कृषि, जिसमें कृषि विस्तार सम्मिलित है।

2) भूमि सुधार, भूमि सुधारों का कार्यान्वयन; भूमि चकबंदी और मृदा संरक्षण।

3) लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और जल विभाजक विकास।

4) पशु पालन, दुग्ध उत्पादन और कुक्कुट उद्योग।

5) मत्स्य पालन।

6) सामाजिक वानिकी और फार्म मत्स्य पालन।

7) लघु वनोपज।

8) लघु स्तरीय उद्योग, जिनमें खाद्य प्रसंस्करण उद्योग सम्मिलित है।

9) खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।

10) ग्रामीण आवास।

11) पेयजल।

12) ईंधन और चारा।

13) सड़कें, पुलिया, पुल, घाट, जल मार्ग और यातायात के अन्य साधन।

14) ग्रामीण विद्युतीकरण जिसमें विद्युत् वितरण भी सम्मिलित है।

15) ग़ैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत।

16) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।

17) शिक्षा, जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय सम्मिलित हैं।

18) तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।

19) प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।

20) पुस्तकालय।

21) सांस्कृतिक गतिविधियाँ।

22) बाज़ार और मेले।

23) स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसमें अस्पताल और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र सम्मिलित हैं।

24) परिवार कल्याण।

25) महिला और बाल विकास।

26) समाज कल्याण, जिसमें विकलांगों तथा मंद बुद्धि व्यक्तियों का कल्याण सम्मिलित है।

27) कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कमजोर वर्गों का कल्याण।

28) जन वितरण व्यवस्था।

29) सामुदायिक परिसम्पत्तियों का रखरखाव।

भारतीय संविधान की बारहवीं अनुसूची, 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992

1) शहरी योजना, जिसमें नगर योजना (Town Planning) सम्मिलित है।

2) भूमि उपयोग का विनियमन और भवनों का निर्माण।

3) आर्थिक और सामाजिक विकास की योजना।

4) सड़कें और पुल।

5) घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए जल आपूर्ति।

6) जन स्वास्थ्य, स्वच्छता और ठोस कचरा निपटान।

7) अग्निशमन सेवाएँ।

8) शहरी वानिकी, पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिकीय पक्षों का संवर्धन।

9) अपंग तथा मंद बुद्धि व्यक्तियों समेत, समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा।

10) मलिन बस्ती का सुधार और उन्नयन।

11) शहरी गरीबी उन्मूलन (Alleviation)।

12) उद्यानों, बगीचों, खेल का मैदानों जैसी शहरी सुख-सुविधाओं का प्रावधान।

13) सांस्कृतिक, शैक्षिक और सौन्दर्यबोध (aesthetic) संबंधी पक्षों का संवर्धन।

14) शवाधान और कब्रिस्थान, शवदाह और श्मशान भूमि और विद्युत शवदाह गृह।

15) पशुशालाएँ (Cattle Pounds), पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम।

16) जन्म और मृत्यु का पंजीकरण जैसे महत्त्वपूर्ण आँकड़े।

17) सड़कों की बत्तियाँ, (Street Light), वाहन खड़े करने की जगह, बस अड्डे और जनसुविधाओं जैसी सार्वजनिक सुख-सुविधाएँ।

18) बूचड़ खानों और चर्मशोधनशालाओं का विनियमन

इकाई 21 जमीनी स्तर के कर्मियों का क्षमता-निर्माण

रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 संस्थागत क्षमता-निर्माण

21.3 निर्वाचित कर्मियों का क्षमता-निर्माण

21.4 स्थानीय प्रशासन का क्षमता-निर्माण

21.4.1 ज्ञान तंत्र

21.5 समुदाय का सशक्तिकरण

21.6 सारांश

21.7 मुख्य अवधारणाएँ

21.8 संदर्भ व अन्य लेख

21.9 अभ्यास

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- स्थानीय स्तर पर क्षमता-निर्माण का महत्त्व समझ सकेंगे;
- स्थानीय स्वशासन के सभी घटकों – नौकरशाही, नागरिक समाज और राजनीतिज्ञों के क्षमता-निर्माण की आवश्यकताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगे; और
- इस संदर्भ में ई-शासन के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

73वें और 74वें संविधान संशोधनों में, देश में ज़मीनी अथवा बुनियादी स्तर का लोकतंत्र लाने के उद्देश्य से, स्थानीय स्वशासन का प्रावधान रखा गया है। यह सपना लंबे समय से संजोया जा रहा था, जो अब साकार होने की प्रक्रिया में है। इन संशोधनों में स्थानीय स्तर पर नई संस्थाओं का सूत्रपात किया गया है। किन्तु, ये संस्थाएँ स्थानीय स्तर पर जिस "क्षमता" में कार्य करेंगी, वह इन कारकों पर निर्भर करेगा: इन संस्थाओं के कार्मिकों – निर्वाचित कर्मी, स्थानीय नौकरशाही और विशेषकर नव स्थापित संस्थाओं – जैसे राज्य वित्त आयोग, जिला आयोजना समिति – के विषय वस्तु विशेषज्ञों को उपलब्ध तकनीकी विशेषज्ञता, अवसंरचना और संसाधन; और समुदाय, जो भविष्य में विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान करने की कला है। किन्तु, सुधार सम्बन्धी प्रयासों के प्रारंभिक चरण में भी इस तरह की बेचैन करने वाली बातें सुनाई दे रही हैं कि इन संस्थाओं में साधारण ज्ञान रखने वालों की भरमार हो रही है जो इन्हें कारगर संस्थाएँ तो नहीं बनाएँगे, बल्कि उन्हें सजावटी संस्थाएँ बना देंगे जिनसे ग्राम्यांचल को कोई लाभ नहीं होने वाला। स्थानीय स्तर पर दिखावे की योजना – प्रयासों और नीतियों

के कार्यान्वयन की समस्याओं को लेकर पहले ही काफी रोना-पीटना हो चुका है। आयोजना की कमियों का कारण तो आवश्यक आँकड़ों के अभाव और उन आँकड़ों का सही उपयोग कर सकने वाले विशेषज्ञों के अभाव को और "रिसाव प्रभाव" पर आधारित योजनागत दृष्टिकोण की व्यापक विफलता को, और स्थानीय प्रशासन द्वारा नीतिगत कथनी को करनी में अर्थात् व्यावहारिक कार्य योजनाओं में नहीं बदल पाने को और भविष्य के प्रति कोई दृष्टि न होने को बताया जा सकता है। वहीं कार्यान्वयन के स्तर पर अवरोधक समस्याओं का कारण स्थानीय सरकारी अधिकारियों में "विवेक" का अभाव है, जिसका मतलब होता है कि आम नागरिकों को भ्रष्ट अधिकारियों से उनके नियमित प्रशासनिक कार्य करवाने के लिए भी पैसा देना पड़ता है। इसका स्पष्ट संकेत है कि ज़रूरत कठोर प्रक्रम बनाने की नहीं बल्कि जवाबदेही का तंत्र स्थापित करने की है। विकास प्रशासन स्वभाव से "लक्ष्य उन्मुख" होता है। इसलिए, प्रावधानों की ज़रूरत पहल को प्रोत्साहित करने के लिए है, जिसकी अत्यधिक आवश्यकता प्रवर्तनकारी नीति की सफलता के लिए है। इसलिए, स्थानीय स्तर पर विकासगत नौकरशाही पर केन्द्रित सुधार के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। कहना न होगा, राज्य स्तर पर सही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, स्थानीय शासन में वांछित परिवर्तनों हेतु राजनीतिक इच्छा शक्ति अति आवश्यक है, क्योंकि वांछित परिवर्तन की प्रेरणा का स्रोत राज्य विधायिका ही होगी।

इस इकाई में, हम स्थानीय प्रशासन के अनेक पहलुओं की जानकारी हासिल करेंगे और देखेंगे कि हाल के संविधान संशोधनों को मूर्त रूप देने हेतु क्या समायोजन आवश्यक हैं।

21.2 संस्थागत क्षमता-निर्माण

हाल ही के संशोधनों में दो नई संस्थाओं – जिला आयोजना समिति और राज्य वित्त आयोग का प्रावधान स्थानीय प्रशासन में किया गया है। राज्य वित्त आयोग के गठन और नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताओं को सम्बन्धित राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। परिणामस्वरूप, इस संदर्भ में जो स्थिति है, वह, वाजपेयी और वर्मा (1995) के अनुसार, अलग-अलग राज्य में अलग-अलग है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाब को लें तो उनके अधिनियमों में गठन और योग्यताओं से सम्बन्धित कोई विवरण नहीं दिया गया है। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे कुछ बड़े राज्यों में छोटे वित्त आयोग हैं, जिनमें मात्र तीन-तीन सदस्य हैं। जहाँ तक आयोग के अध्यक्ष के लिए निर्दिष्ट योग्यताओं का सवाल है तो, असम, बिहार, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडू और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों ने अपने अधिनियमों में इस सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं दिया है। आंध्र प्रदेश और गुजरात में, निर्दिष्ट योग्यता "सार्वजनिक मामलों में व्यापक अनुभव" है।

सदस्यों की योग्यता के सवाल पर सावधानीपूर्वक विचार करना होगा, क्योंकि संविधान के अनुसार राज्य वित्त आयोगों के पास योजनागत और ग़ैर-योजनागत, दोनों प्रकार के बजट हस्तांतरित करने का प्रभार होगा। यह केन्द्रीय वित्त आयोग के विपरीत होगा, जिसका निधि आबंटन का काम योजना आयोग के हाथों में चला गया है। राज्य योजना आयोग क्योंकि इतने शक्तिसंपन्न नहीं होते, इसलिए वित्त आयोग को उसे उपलब्ध सारी विशेषज्ञता की आवश्यकता होगी, तभी वह स्थानीय स्वशासन निकायों को योजनागत और ग़ैर-योजनागत निधि आबंटित करने वाले सर्वेसर्वा प्रभारी निकाय के रूप में अपनी भूमिका के प्रति न्याय कर पाएगा। राज्य वित्त आयोगों के विचारार्थ विषयों के भी और व्यापक होने की संभावना है क्योंकि उनके विचारार्थ विषयों को किसी निर्दिष्ट कर अथवा डयूटी तक सीमित रखने का कोई संवैधानिक अनुबंध नहीं है। किसी राज्य विशेष में विशिष्ट विचारार्थ विषयों का निर्धारण उसकी विशेष आवश्यकताओं द्वारा उन कार्यों के आलोक में होगा जो संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में दिए गए हैं।

जहाँ तक जिला आयोजना समिति का प्रश्न है, तो अधिकांश राज्यों ने अपने अधिनियमों में पर्याप्त

जानकारी नहीं दी है जिससे 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में दिए गए जिला आयोजना समिति के प्रावधान को अमली जामा पहनाया जाए। केवल छः राज्यों – असम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान और तमिलनाडू – ने अपने अधिनियमों में जिला आयोजना समिति के बारे में कुछ जानकारी प्रदान की है। स्वरूप कमोबेश एक जैसा ही है। प्रत्यक्ष तरीके से निर्वाचित सदस्यों – विधायकों, विधान मंडल सदस्यों, सांसदों, जिला परिषद अध्यक्ष, नगर-निगम/बोर्ड के अध्यक्ष अथवा महापौर, जिनके पास जिला मुख्यालय का क्षेत्राधिकार है – को जिला आयोजना समिति में शामिल किया गया है। किसी भी राज्य ने यह उल्लेख नहीं किया है कि निर्वाचित सदस्यों का चयन किस ढंग से होगा। किसी भी राज्य ने जिला योजना समिति को सौंपे गए कामों की सूची तैयार नहीं की है।

जिले के लिए व्यापकतर विकास आयोजना की योजना में जिला आयोजना के महत्त्व को देखते हुए, ये विषमताएँ चुभने वाली हैं। जिला आयोजना समिति की संकल्पना इसलिए की गई थी कि ग्रामीण क्षेत्रों को विपणन, बैंकिंग, मरम्मत कार्यशाला जैसी उच्चतर सेवाओं के प्रदाताओं के रूप में, छोटे और मध्यम शहरों पर ज़ोर देते हुए, शहरी और ग्रामीण आयोजना के बीच अत्यावश्यक एकीकरण स्थापित किया जा सके। हनुमंत राव कार्य समूह ने पहले इस विचार को सामने रखा जिसका अभी तक अनुसरण हो रहा था और अंत में 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में इसे अमली जामा पहनाया गया। इस बात पर ज़ोर दिया गया कि जिला योजनाओं की संकल्पना मात्र ग्रामीण योजनाओं के रूप में नहीं बल्कि स्थानिक योजनाओं के रूप में जो ग्रामीण क्षेत्रों और इन क्षेत्रों के विकास से निकटता से जुड़े क्षेत्रों के संदर्भ में ग्रामीण विकास और शहरी विकास के परस्पर सम्बन्धों का संज्ञान लेकर की जाए। यह सिफारिश की गई है कि 10,000 से कम जनसंख्या वाले शहरी क्षेत्रों को जिला विकास आयोजना के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों जैसा ही माना जाए।

21.3 निर्वाचित कर्मियों का क्षमता-निर्माण

स्थानीय निकायों के बार-बार के विघटन, निलंबन और अधिक्रमण ने निर्वाचित कर्मियों के बीच प्रशासनिक सामर्थ्य के विकास को अवरुद्ध कर दिया है। इसलिए, स्थानीय स्तर पर सार्वजनिक मामलों का अनुभव विकसित करने हेतु, स्वशासन की संस्थाओं के रूप में स्थानीय निकायों के विकास में सहायता देने के लिए राज्य स्तर पर राजनीतिक इच्छा शक्ति अत्यावश्यक है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में, आंशिक तौर पर ही सही, विघटन (भंग होने) की समस्या का समाधान किया गया है। पंचायतों को लंबे समय तक निलंबन अथवा भंग की स्थिति में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि अब राज्य सरकार के लिए अनिवार्य हो गया है कि वह भंग होने के छह महीनों के अंदर ही उनके चुनाव करा देगी। वैसे यह स्पष्ट निर्दिष्ट नहीं है कि पंचायत को किन आधारों पर और किसके द्वारा भंग अथवा निलंबित किया जा सकता है। इन मामलों को राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। परिणामस्वरूप, अलग-अलग राज्यों में स्थिति अलग-अलग है। मसलन, जहाँ तक पंचायतों का सवाल है, तो बिहार में *जिला परिषद* अथवा *सरकार*, कर्नाटक अथवा महाराष्ट्र में *आयुक्त* (कमिश्नर), हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश में *निर्दिष्ट प्राधिकारी* अथवा *सरकार*, और शेष राज्यों में *सरकार* को उन्हें भंग करने का अधिकार है। मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायत को भंग करने का अधिकार हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश में *सरकार* के पास, और शेष राज्यों में सरकार अथवा सरकार द्वारा अधिकृत अथवा शक्तिसंपन्न किसी व्यक्ति अथवा अधिकारी, के पास है। विघटन और ताजाचुनाव के बीच के समय में काम एक तदर्थ बोर्ड अथवा आयोग, अथवा व्यक्ति, अथवा व्यक्ति-समूह को सौंपा जाता है, जिस राज्य की जैसी रीति हो। इस दौरान, राज्य सरकार समय-समय पर इस तरह के मामलों की और ऐसे ही अन्य मामलों की जाँच करती है जिसमें कानून के अंतर्गत राज्य सरकार की स्वीकृति, अनुमोदन, सहमति अथवा आदेश की ज़रूरत होती है, अथवा जहाँ दुराचरण अथवा कर्त्तव्यों की घोर अवहेलना के कारण सार्वजनिक संपत्ति की हानि अथवा बर्बादी के मामले में सरकारी अधिकारियों की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का निर्धारण करना होता है।

स्थानीय शासन पर गठित अधिकांश समितियाँ और कार्य समूह राज्य सरकार द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपायों के बारे में सहमत थे। प्रत्येक कार्य समूह ने इस बात का समर्थन किया कि पंचायत को भंग करने के प्रस्ताव पर जिला परिषद को विस्तार से चर्चा करनी चाहिए और यह अंतिम कदम केवल तभी उठाना चाहिए जब इस तरह के प्रस्ताव को शीर्ष निकाय पारित कर दे। इसी तरह, विधान सभा को मध्यवर्ती और जिला पंचायतों को भंग करने के प्रस्ताव पर चर्चा करके उसे पारित करना चाहिए। ग्राम पंचायत को भंग करने के प्रस्ताव पर जिला मजिस्ट्रेट को और मध्यवर्ती अथवा जिला पंचायतों को भग करने के प्रस्ताव पर मंडल आयुक्त को जाँच करनी चाहिए। किन्तु, नए प्रावधानों को देखकर तो लगता है कि इस मुद्दे को जिस गंभीरता से लेना चाहिए था वह नदारद है (वहीं)।

विघटन के अतिरिक्त, लोकतांत्रिक स्वशासन के लिए नवगठित स्थानीय संस्थाओं की सदस्यता का प्रश्न भी इन संस्थाओं की "समाजशास्त्रीय गतिशीलता" को समझने के संदर्भ में प्रासंगिक है। यदि अंतर्निहित सामाजिक व्यवस्था "अल्पतंत्रीय" और "अल्पाधिकारी" बनी रहती है, तो हो सकता है कि राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पूरे तौर पर कारगर न हो। इसलिए, महिलाओं और सामाजिक तौर पर हाशिए पर स्थित जाति समूहों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान 73वें संविधान संशोधन में किया गया है। हालाँकि, सत्यता के लिए, जाति-आधारित आरक्षण के मुद्दे पर बहस की जा सकती है, फिर भी हमें इस तथ्य से सहमत होना होगा कि फायदे किसी भी तरह से समाज के अब तक "अछूते" तबकों तक पहुँच रहे हैं। इसके परिणाम इस अर्थ में उत्साहजनक हैं कि शक्तिशाली वर्ग के हाथों चतुराई में मात खाने के बावजूद, महिलाएँ और साधारण गरीब किसान भागीदारी के लिए आगे आ रहे हैं। ऐसे परिदृश्य में, कानून का राज सबसे अहम ज़रूरत है। इसके लिए पुलिस प्रशासन को ध्यान देना होगा। स्थानीय स्तर पर विकेन्द्रीकृत सेवाएँ प्रदान करने हेतु पंचायत थानों का प्रयोग करके एक अच्छी शुरुआत कर दी गई है। फिर भी देहातों में व्याप्त विशेषाधिकार की व्यवस्था को जोड़ने के लिए "कार्यचालन" पर तुरंत ध्यान देना होगा। सामुदायिक पुलिस व्यवस्था के माध्यम से लोगों और कानून-व्यवस्था तंत्र के बीच विकेन्द्रीकृत सम्बन्ध के भी प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसा एक उदाहरण तमिलनाडू का "पुलिस के मित्र कार्यक्रम" है, जिसमें समुदाय के सदस्यों को अपराध की रोकथाम और उसका पता लगाने की प्रक्रिया में हिस्सेदार के तौर पर सूचीबद्ध किया जाता है। प्रत्यक्ष पुलिस कार्य में स्थानीय समुदाय की इस तरह की हिस्सेदारी से आम जनता के प्रति स्थानीय प्रशासन की जवाबदेही सुनिश्चित होती है, और समुदाय के सदस्यों में विश्वास पैदा होता है, जो इस कवायद की सबसे अहम बात है। दोएल मुखर्जी के अनुसार, इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण मध्य प्रदेश में पुलिस के तत्त्वावधान में संचालित "परिवार परामर्श केन्द्र" है जिसमें परिवारों के झगड़ों के मूल कारण पर ध्यान देकर उसका समाधान किया जाता है और संभावी समस्या को फूटने से पहले ही दबा दिया जाता है (मुखर्जी, 2005)। मध्य प्रदेश में सामुदायिक पुलिस व्यवस्था के अन्य उदाहरण हैं, ग्राम रक्षा समितियाँ, नगर रक्षा समितियाँ, चाइल्डलाइन, घायलों को चिकित्सीय राहत, नशा मुक्ति शिविर आदि।

पुलिस प्रशासन पर ध्यान देने की आवश्यकता क्यों है, इसका एक कारण यह है कि "कानून का राज" एक उदारवादी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसका एक अन्य सिद्धान्त है "अनुबंध की स्वतंत्रता"। अनुबंधों (ठेकों) के लिए बोली लगाने वालों के बीच ईमानदार प्रतियोगिता संभव बनाने के लिए माफिया की गतिविधियों और भ्रष्टाचार के अन्य स्रोतों पर लगाम लगानी होगी, और वह भी विशेषकर इसलिए कि निजी क्षेत्र अब सरकार की हिस्सेदारी के साथ सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने में संलिप्त होगा (दसवीं योजना)।

21.4 स्थानीय प्रशासन का क्षमता-निर्माण

वांछित परिणाम हासिल करने के लिए प्रशासन की बढ़ी हुई क्षमता को राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की

पहलों के अनुकूल बनाना होगा। जैसा कि दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में कहा गया है, राजनीतिक मोर्चे पर वर्षों के दौरान जो लोकतंत्रीकरण की स्थिति बनी है, उसमें और आर्थिक मोर्चे पर हुई प्रगति में कोई मेल नहीं है। "व्यक्तिगत पहलों पर अब भी अत्यधिक नियंत्रण और प्रतिबंध हैं, और हमारी अनेक विकास संस्थाओं में आज भी पितृसत्ताक व्यवहार दिख रहा है जो अब काल दोष का सूचक बन गया है ..."। जहाँ निजी निगमित क्षेत्र हिस्सेदारी करेगा, ऐसे अनेक क्षेत्रों में जहाँ राज्य एक उत्प्रेरक और प्रोन्नायक का काम करेगा, वहीं कुछ अन्य क्षेत्रों, मसलन अवसंरचना की व्यवस्था (सड़कों, पुलों, ग्रामीण विद्युतीकरण, निर्धनों के लिए आवास, का निर्माण) जैसे कुछ अन्य क्षेत्रों में इसकी भूमिका सचमुच बढ़ जाएगी जहाँ निजी भांगीदारी नगण्य है। इस संदर्भ में प्रक्रम सम्बन्धी देरी से निष्पादन प्रभावित होता है और अधिकांश निधियों को बजट वर्ष के अंत में प्रस्तुत करना होता है। दसवीं योजना में प्रस्तावित संविदाओं के एकल खिड़की समाशोधन जैसे प्रक्रम सम्बन्धी सुधार का इस स्थिति को सुधारने की दिशा में दूरगामी प्रभाव होगा।

दसवीं योजना (2002-07) में यह भी उचित ही कहा गया है कि कृषि अनुसंधान का स्तर गिरा है, जबकि विस्तार सेवाएँ वस्तुतः ध्वस्त हो गई हैं। कृषि अनुसंधान और विकास को सशक्त करना होगा, जबकि विस्तार सेवाओं को फिर से पटरी पर लाना होगा। शिक्षा और स्वास्थ्य का परिव्यय सबसे कम है। वर्ष के अंत में, इन्हीं दो क्षेत्रों में सबसे अधिक मात्रा में, "खर्च न की गई राशि" मिलती है। मानव संसाधन विकास में और अधिक निवेश की ज़रूरत है क्योंकि मानव पूँजी तो अर्थव्यवस्था की मुख्य संचालिका है। इस मामले में भारत तो चीन और दक्षिण एशियाई राष्ट्रों जैसे अन्य विकासशील देशों के मुकाबले पिछड़ गया है (सेन, 1990)।

नगर संस्थाओं के कर्मचारियों में यूनियनबाजी बहुत अधिक है। उन्होंने अपनी सांगठनिक ताकत के बल पर वेतनों में काफी बढ़ोतरी करवा ली है। मुम्बई इसका एक उदाहरण है। श्रम कानून में सुधार का मामला कुछ समय से लटका हुआ है और उसका अधिक प्रभाव नहीं हुआ है, क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टियों के सदस्य और समाजवादी विचारधारा से जुड़े अन्य लोग इसका घोर विरोध करते हैं। श्रम कानून में सुधार होने से निवेश बढ़ेगा और रोज़गार की स्थिति में अच्छा खासा सुधार आएगा, क्योंकि कम्पनियाँ कारोबार करने को उत्साहित होंगी और उन पर अत्यधिक संरक्षणकारक श्रम कानूनों का बंधन नहीं होगा।

तंत्र को लागत और उत्पादन दोनों ही क्षेत्रों में सुधारने की ज़रूरत है। लागत अथवा निवेश का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है; उत्पादन पक्ष से आशय किसानों के प्रयासों के परिणाम से है जो पैसों के रूप में सामने आता है। फसल-उपरांत प्रौद्योगिकी और बाजारी अवसंरचना की माँग है कि कृषि व्यापार को संचालित करने वाले प्राचीन नियमों पर फिर से गौर किया जाए।

स्थानीय प्रशासन में सांगठनिक बदलाव की प्रक्रिया भी चल रही है, हालाँकि उसे फलीभूत होने में समय लगेगा। इस संदर्भ में विचारणीय मुद्दे हैं : ग्रामीण विकास के विभिन्न विशेषज्ञ कार्यों में कार्मिकों का प्रशिक्षण और प्रशासनिक ढाँचे को युक्तिसंगत बनाना। जिला कलेक्टर के पास इस समय विनियामक प्रशासन और विकास प्रशासन की दोहरी ज़िम्मेदारियों का अतिरिक्त बोझ है। हालाँकि, विशेषज्ञता की ओर एक स्पष्ट रूझान दिखाई देता है। कानून और व्यवस्था के प्रशासन में उसकी भूमिका कम हो गई है, क्योंकि एस.पी. के ए.सी.आर. लिखने जैसे प्रशासनिक कार्यों को क्षेत्र के डी आई जी को हस्तांतरित कर दिया गया है। जहाँ तक विकास का प्रश्न है, तो भविष्य में नौकरशाही के साथ लोकतांत्रिक संस्थाओं को भी इस सम्बन्ध में अधिकाधिक ज़िम्मेदारियाँ निभानी होंगी। इस संदर्भ में अभी तक जो स्थिति है वह सहयोगात्मक न होकर टकरावपूर्ण इस मायने में अधिक है कि लोकतांत्रिक स्वशासन संस्थाओं को प्रशासन के कार्य में सार्थक ढंग से लगाने के मामले में नौकरशाही को परहेज रहा है। इस संदर्भ में स्थितियाँ किस हद तक बदलेंगी, यह तभी पता चलेगा जब चीजें स्पष्ट होंगी।

बहरहाल, यह वांछनीय ही है कि कलेक्टर स्थानीय क्षेत्र में कुछ विकास सम्बन्धी ज़िम्मेदारियों से स्वयं को मुक्त करे क्योंकि कलेक्टर द्वारा पर्याप्त ध्यान नहीं दिए जाने के कारण वर्षों के दौरान *राज्य क्षेत्र* को नुकसान उठाना पड़ा है। वर्षों के दौरान हुए योजनागत आबंटनों के विश्लेषण से पता चलता है कि स्थानीय क्षेत्र के मुकाबले उसमें कहीं अधिक आबंटन किए जाते हैं।

कलेक्टर द्वारा स्थानीय क्षेत्र की योजनाओं – जैसे गाँव में सड़कों, कुओं, स्कूल भवनों का निर्माण – में अधिक समय दे दिए जाने से राज्य क्षेत्र की अनेक योजनाओं – जैसे भूमि सुधार, ग्रामीण उद्योग – का नुकसान हुआ है, और इससे एक स्व-उत्पादक कृषि औद्योगिक अर्थव्यवस्था के उभार को धक्का लगा है। राजस्व कार्यालयों की क्षमता पर्याप्त ध्यान के अभाव में धीरे-धीरे कम होती गई है। वास्तव में, जिला प्रशासन द्वारा स्थानीय निकायों का बार-बार अधिक्रमण किए जाने का कारण भी यही सांगठनिक कमज़ोरी है। जाँच कार्य अपर्याप्त और सतही थे, जिसका अर्थ यह हुआ कि समय से सुधार के उपाय नहीं किए जा सके और इस कारण अधिक्रमण अपरिहार्य हो गया (लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट, 1961, महाराष्ट्र)। अतिरिक्त कलेक्टरों वाला प्रयोग भी पूरे तौर पर सफल नहीं हुआ है। इस तरह, जिला स्तर पर कार्य को युक्तिपूर्ण बनाना बिल्कुल आवश्यक हो जाता है, तभी योजनागत कार्यक्रमों की रूकावटों को दूर किया जा सकेगा।

कृषि अनुसंधान तथा शिक्षा सम्बन्धी संयुक्त भारतीय अमरीकी दल (1955) ने कर्मचारियों की नियुक्ति से सम्बन्धित एक बड़ी विषमयता की ओर इशारा किया था, जो भारतीय प्रशासन में आज भी मौजूद है। यह सामान्य बनाम विशेषज्ञ की समस्या है। इस दल की सिफारिश थी कि कृषि विभागों कृषि अनुसंधान संस्थाओं में शीर्ष पदों पर सामान्य प्रशासकों के स्थान पर विशेषज्ञों को रखा जाए। यह तकनीकी विशेषज्ञों की उस आपत्ति के अनुसार ही है कि ग्रामीण विकास तो वैज्ञानिकों का काम है, प्रशासकों का नहीं। 1957 में, खाद्य पदार्थों की जाँच समिति ने बड़ी सिंचाई परियोजनाओं की प्रगति, सिंचाई क्षमता के उपयोग तथा बीज उत्पादन और सिंचाई कार्यक्रमों में होने वाली देरी और कमी की असंगतता को देखकर चिंता व्यक्त की थी। इसका सम्बन्ध शायद ग्राम विकास से जुड़े मुद्दों की अपर्याप्त समझ से था (आई. सी. एस. एस. आर., 1975)। काम के युक्तिकरण की ज़रूरत को स्वीकार किया जाता है।

कुछ ऐसे नए सरोकार उभर कर सामने आ रहे हैं जिनके लिए स्थानीय प्रशासन को तैयार रहना होगा। ऐसे दो सरोकार आपदा प्रबंधन और सतत् विकास से सम्बन्धित हैं। स्थानीय स्तर पर इस समय विकासगत आयोजना पर बल दिया जा रहा है, उसके चलते आपदा प्रबंधन एक फोकल क्षेत्र होगा, क्योंकि घटना के बाद वहीं पहला असर दिखाई देता है और वहीं पहली अनुक्रिया भी होती है। इसलिए, यह अनिवार्य हो जाता है कि इस सम्बन्ध में विकासगत आयोजना में स्थानीय भागीदारों की बात को महत्त्व दिया जाए, और स्थानीय समुदायों को आपदा अनुक्रिया के लिए प्रशिक्षित किया जाए और उसके लिए उपयुक्त संस्थागत प्रावधान हो। दसवीं योजना कार्यनीति के लक्ष्य को प्रकट करती है। स्थानीय पहलों को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाएँगें :

- समुदाय को आपदाओं से निपटने की शक्ति प्रदान करने हेतु उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण और सूचना के प्रसार के माध्यम से जागरूक किया जाएगा;
- ग़ैर-सरकारी संगठनों और समुदाय आधारित संगठनों को आपदा प्रबंधन प्रणाली में शामिल किया जाएगा; और
- महिलाओं और बच्चों जैसे अधिक कमज़ोर समूहों को विशेष सहायता हेतु चिह्नित किया जाएगा।

सतत् विकास के लिए आवश्यक है कि प्रवण क्षेत्रों की सभी विकास योजनाओं में एक प्रस्तावित परियोजना अथवा नीति के औचित्य के आंकलन के लिए आपदा न्यूनीकरण विश्लेषण को शामिल किया जाए।

21.4.1 ज्ञान तंत्र

सूचना अथवा जानकारी क्योंकि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संसाधन हैं, इसलिए सरकार और नागरिकों के बीच और संगठन में महत्त्वपूर्ण निर्णय केन्द्रों तक समस्त संस्थाओं में सूचना को तेज गति और सक्षमता से भेजना नीति निर्माण के लिए अत्यधिक महत्त्व रखता है। सूचना संचार क्रांति आज इसे संभव बना रही है। आज व्यवहार में "डिजिटल शासन" शब्द प्रचलित है। सरल अथवा आसान शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि *डिजिटल शासन* में डिजिटल शासन (सार्वजनिक सेवा की पूर्ति) और डिजिटल लोकतंत्र (शासन में नागरिकों की भागीदारी) दोनों ही शामिल हैं। अमेरिकन सोसाइटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा 2003 में किए गए और 2005 में अद्यतन बनाए गए एक सर्वेक्षण में विकसित और विकासशील देशों के बीच एक घोर "डिजिटल फूट" सामने आई है।

हालाँकि पूरे विश्व में डिजिटल शासन का औसत स्कोर 33.11 है, ओ.ई.सी.डी. देशों में औसत स्कोर 44.35 के उच्च अंक पर है और ग़ैर-ओ.ई.सी.डी. देशों में औसत स्कोर 26.50 के निम्न अंक पर है। ई-गवर्नेन्स की जिन पाँच श्रेणियों में वेबसाइटों का मूल्यांकन किया गया, वे हैं: *सुरक्षा और गोपनीयता* (प्रमाणीकरण से सम्बन्धित गोपनीयता नीतियाँ और मुद्दे), *उपयोगिता* (पारंपरिक वेब पेज, फॉर्म और सर्च उपकरण), *विषयवस्तु सेवाएँ* (संपर्क सूचना तक पहुँच, सार्वजनिक दस्तावेजों तक पहुँच, अयोग्यता पहुँच और मल्टीमीडिया अथवा दूर संचार तथा समय संवेदी सूचना तक पहुँच) और *नागरिक भागीदारी* के उपाय (शासन में भागीदारी को सुगम और प्रोत्साहित करने हेतु किस प्रकार प्रावधान किए जा रहे हैं)। जहाँ सोल पहले स्थान पर रहा, और उसके बाद न्यूयॉर्क, शंघाई और हांगकांग का स्थान रहा, वहीं मुम्बई 48वें स्थान पर, करांची 62वें स्थान पर और ढाका 73वें स्थान पर रहा। तीसरा मूल्यांकन 2007 में करने की योजना है। इस सर्वेक्षण में इस बात की पुष्टि होती है कि कम उन्नत राष्ट्रों में समावेश और निर्देश के लिए वैश्विक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ व्यवहारों के मूल्यांकन हेतु ई-गवर्नेन्स के क्षेत्र में अनुसंधान की आवश्यकता और महत्ता है (होल्ज़र, किम, 2005)।

ई-गवर्नेन्स ने उन शहरों में राजस्व को रिकार्ड ऊँचाइयों पर पहुँचा दिया है जहाँ लाभ अर्जित किए गए हैं। स्थानीय निकायों में ई-गवर्नेन्स की पहल के मुख्य उद्देश्य हैं: जवाबदेही और प्रबंधन सूचना प्रणाली के माध्यम से दक्षता और प्रतिनिधि नागरिक कार्यवाही समूहों और नागरिकों तक सूचना की संवर्धित पहुँच के माध्यम से लोगों की ओर से हितों की अभिव्यक्ति। इस सम्बन्ध में इसका ताजा उदाहरण राजस्थान राज्य सरकार की पहल है, जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- सम्पत्ति अभिलेखों और शहरी भूमि के लिए साझा डाटाबेस के विकास के माध्यम से प्रभावी राजस्व संग्रह।
- नगर निगमों की समस्त गतिविधियों के कम्प्यूटरीकरण, कार्मिक प्रबंधन प्रणालियों और प्रबंधन सूचना प्रणालियों के विकास के माध्यम से बेहतर कार्यालय प्रशासन।
- दोहरी प्रविष्टि लेखाकरण प्रणाली के समावेशन द्वारा सक्षम लेखाकरण।
- जन्म तथा मृत्यु प्रमाणपत्र और व्यापारिक लाइसेंस जारी करना।
- मण्डल और केन्द्रीय कार्यालयों के बीच सूचना प्रवाह प्रणालियाँ स्थापित करना।
- वेबसाइट के माध्यम से सूचना देने के द्वारा संवर्धित नागरिक सेवाएँ।
- नगर निगम कार्मिकों को प्रस्तावित प्रणाली के संचालन और रखरखाव का प्रशिक्षण देकर उनमें क्षमता-निर्माण करना।

आवश्यक सीमा तक बाहरी क्षेत्र में बदलावों को आत्मसात करने की क्षमता का स्थानीय प्रशासन में संवर्धन करने हेतु, वर्तमान में कार्मिकों को ई-गवर्नेन्स में प्रशिक्षण महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।

21.5 समुदाय का सशक्तिकरण

नागरिक समाज तो नई वैश्विक व्यवस्था की आशा है। ऐसा विशेषकर इसलिए है क्योंकि यह विभिन्न कारणों से बाजार और राज्य द्वारा छोड़े गए राजनीतिक खाली स्थान में कार्य करता है। बाजार द्वारा लाभकारिता के कारणों से, क्योंकि कुछ क्षेत्र, विशेषकर ग्राम विकास में, लाभकारिकता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है; राज्य द्वारा वित्तीय अथवा प्रबंधकीय सीमाओं के कारण से। सेवा के प्रावधान में राज्य और बाजार की असफलताओं की भी खबरें मिली हैं; दोनों ही, सार्वजनिक और निजी सभी प्रकार की वस्तुओं के वितरण के लिए दोषरहित माध्यम नहीं हैं। जहाँ निजी क्षेत्र निजी वस्तुओं के वितरण के मामले में सक्षम है, क्योंकि लाभार्थियों की पहचान करके उनसे सेवाओं के लिए प्राप्त लाभों के अनुसार शुल्क वसूला जा सकता है; वहीं सार्वजनिक वस्तुओं से प्राप्त लाभ उस अर्थ में आसानी से कम नहीं किए जा सकतेः मसलन, हम सभी सुरक्षा से समान रूप से लाभान्वित होते हैं, इसलिए हमसे अलग-अलग शुल्क नहीं वसूला जा सकता, जिससे बाजार के लिए ये सेवाएँ प्रदान करना कठिन हो जाता है। इस तरह, जहाँ निजी क्षेत्र अलाभकारी क्षेत्रों में प्रवेश नहीं करता और सरकार पैसों, कर्मचारियों और/अथवा प्रबंधकीय क्षमता की कमी के कारण बाधित रहती है, वहीं अवसंरचना और मानव संसाधन विकास के वांछित परिणाम नहीं मिल पाते। ग़ैर-सरकारी संगठनों अथवा स्वैच्छिक क्षेत्र से युक्त नागरिक समाज इस राजनीतिक स्थान में, रचनात्मक तरीके से, प्रवेश कर जाता है और इस संदर्भ में पाई जाने वाली कमियों को पूरा करने हेतु राज्य और निजी कार्पोरेट क्षेत्र के साथ-साथ काम करता है। जैसा कि दसवीं योजना के दस्तावेज में ठीक ही कहा गया है, विकेन्द्रीकरण पंचायती राज्य संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों (ULB) के स्तर पर नहीं रुक सकता। जल उपभोक्ता संघ और स्वास्थ्य तथा शिक्षा समिति जैसे नागर समाज संगठनों की सामर्थ्य का दोहन किया जाना चाहिए क्योंकि ये सेवा वितरण में बड़ा सुधार करने की दिशा में योगदान कर सकते हैं। इस लक्ष्य के संदर्भ में, विशेष जैसा कि दसवीं योजना में संकल्पना की गई है, एक ओर लोगों के साथ और दूसरी ओर राज्य के साथ अधिक सक्रिय और मुखर साहचर्य रखते हुए किसान सहकारिताओं को फिर से अनुप्राणित करके और स्वैच्छिक क्षेत्र को प्रोत्साहन देकर नागरिक समाज को वांछित ढंग से मज़बूत किया जा सकता है। अधिक अन्न उपजाओ अभियान (Grow more Food Campaign) का पहला आधिकारिक आंकलन प्रस्तुत करने वाली खाद्यान्न नीति समिति (Food Grains Policy Committee) ने (1943-44 से 1950-51) कृषि उत्पादकता और वांछित वृद्धि प्राप्त करने की दिशा में ग्राम पंचायतों और सहकारी संगठनों के महत्त्व पर ज़ोर दिया है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह समुदाय विकास कार्यक्रम का निर्देशक सिद्धान्त भी था, जो मुख्य रूप से इस संदर्भ में कमी के चलते असफल हो गया; लोगों की सहभागिता आवश्यक मात्रा में प्राप्त नहीं की जा सकी (आई. सी. एस. एस. आर., 1975)।

प्रशासन में लोगों की भागीदारी समान रूप में आवश्यक है। किन्तु, भागीदारी से सम्बन्धित अध्ययनों से शक्तिशाली तबकों की ओर पक्षपातपूर्ण झुकाव दिखाई देता है, क्योंकि उनके पास भागीदारी के "साधन" होते हैं। समय भी इसमें बाधा उत्पन्न करने वाला कारक है क्योंकि गरीब लोग अधिकतर रोज़ी-रोटी कमाने में ही लगे रहते हैं और उनके पास भागीदारी के लिए समय नहीं होता। सामाजिक दासता की स्थिति भी उन्हें अपनी बात प्रभावकारी ढंग से नहीं रखने देती। इसलिए भागीदारी के लिए तो प्रशासन को ऐसा "सामर्थ्यकारक वातावरण बनाना होगा जहाँ गतिविधियों से लाभ हो और उसमें गरीबों की रुचि भी बनी रहे। इसके लिए भागीदारी इस तरह से प्राप्त करनी होगी कि इससे लोगों के लिए रोज़गार के वैकल्पिक मार्ग खुलें और उन पर किसी भी तरह से लेन-देन अथवा परिवहन जैसी किसी भी लागत का बोझ न पड़े। इसका उदाहरण संयुक्त वन प्रबंधन योजना (JFM) है, जिसे इस

सिलसिले में अच्छी सफलता मिली है। यह योजना फसल खराब होने की स्थिति में गरीब किसानों को अतिरिक्त आय और वैकल्पिक रोज़गार उपलब्ध कराती है। इसके लिए किसानों से वनों में रोपण का सवेतन काम दिया जाता है जिससे भागीदारी इस उद्देश्य के लिए और उसमें शामिल लोगों के लिए भी लाभदायी साबित होती है (विश्व बैंक, 2003)। संयुक्त वन प्रबंधन योजना में, वनों के प्रयोग और प्रबंधन से सम्बन्धित अधिकार और उत्तरदायित्व तो राज्य (राज्य वन विभाग) और स्थानीय वन सुरक्षा समितियों (FPC) को मिले होते हैं। इसके घोषित, उद्देश्य हैं: (1) ग्रामीण समाज के गरीब और आशिंक तौर से वनों पर निभतर जनजाति और दूसरे संवेदनशील और कमज़ोर वर्गों की वन उपयोग तथा प्रबंधन की निर्णयकारी प्रक्रियाओं में भागीदारी करने और उनसे लाभ प्राप्त करने के अवसर प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाना; और (2) पर्यावरण संरक्षण, तथा गरीबों के लिए बेहतर वनोपज के दोहरे लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु खराब वनों के विस्तृत क्षेत्रों को फिर से खड़ा करना और सुधारना। संयुक्त वन प्रबंधन योजना समझौतों के अंतर्गत, स्थानीय प्रयोक्ताओं को निर्णय करने के महत्त्वपूण अधिकार मिले होते हैं जिनसे उन्हें अपने हितों के सर्वथा अनुकूल महत्त्वपूर्ण नियम बनाने और लागू करने की शक्ति मिल जाती है। किन्तु इस विषय में बहुत कम आनुभाविक अध्ययन हुए हैं कि भागीदारी की प्रकृति क्या है, अर्थात् क्या उसका झुकाव अमीरों और ताकतवर लोगों की ओर है, और स्थानीय समुदायों की "आवाज" वास्तव में किस हद तक सुनी जा रही है। इसके अतिरिक्त, भागीदारी का प्रोत्साहन और भागीदारी करवाना एक मुद्दा है। जब काम होता है, तो अमीर और गरीब किसान अपने-अपने कारणों से भागीदारी नहीं करते। किन्तु, अतिरिक्त लाभ के आकर्षण में लोग बैठकों में भाग लेते हैं। ये लाभ सेवाओं के बदले वेतन, और वन संरक्षण के कारण पशुपालन जैसी कृषि इतर-गतिविधियों और बेहतर वनोपज के रूप में हो सकते हैं। पूरक गतिविधियों के तौर पर सामुदायिक विकास परियोजनाएँ भी शुरु की जाती हैं – जैसे सिंचाई के लिए बाँध और सड़कों का निर्माण, पेयजल, स्वास्थ्य सेवा और बिजली की व्यवस्था – और इनसे भी लोगों को भागीदारी के लिए प्रोत्साहन मिला है। पशु और सिलाई मशीनों के वितरण जैसे, कुछ अन्य कदम भी लोगों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए उठाए जाते हैं।

बहरहाल, विश्व बैंक ने अपने आंकलन अध्ययन में कुछ खामियों की ओर इशारा किया है। सामुदायिक आवश्यकताओं की वरीयता निर्धारित किए बगैर ही बहुत सारा पैसा खर्च कर दिया गया। कार्यक्रम के मूल में जो समुदाय के सशक्तिकरण का भाव था, उसके और स्थानीय वन विभाग की नौकरशाही के बीच असंगति भी देखी गई, जिससे कार्यान्वयन सम्बन्धी रुकावटें आईं। सामुदायिक आवश्यकताओं की वरीयता इसलिए निर्धारित नहीं हो पाई क्योंकि स्वयं लोगों ने ही इस सम्बन्ध में अपनी आवाज़ मुखर नहीं की, जिनमें से अधिकांश गरीब, और सामाजिक दृष्टि से हाशिए पर बने हुए हैं। कुमार और कांत (2005) इसलिए सिफारिश करते हैं कि वांछित परिणामों की प्राप्ति के लिए जमीनी स्तर पर सांगठनिक ढाँचे में कार्यक्रम के अनुरूप ठोस बदलाव किए जाएँ। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि नौकरशाही की मनोवृत्ति में भारतीय प्रशासन के बदलते नमूने के अनुसार बदलाव किया जाए, जिसमें प्रधानतः राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर एक नव उदारवादी अर्थव्यवस्था आती दिखाई दे रही है। यहाँ ज़ोर शासन में सरकारी निजी भागीदारी पर और प्रशासन के साथ नागरिक समाज के निकटतर सम्बन्ध पर है, जो प्रशासनिक संस्कृति में बदलाव की माँग करता है (बेहर, 2005)।

21.6 सारांश

बदलाव का वांछित वातावरण "सृजित" करने के लिए लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आजकल लोकतंत्र बहुत से प्रतिबंधों में काम कर रहा है। वित्तीय और सांगठनिक दबावों के अतिरिक्त, लोगों, विशेषकर गरीब लोगों के बीच समझ का न होना भी लोकतंत्र के लिए अड़चन पैदा करता है क्योंकि इससे वे नेतागिरी से जल्दी प्रभावित हो जाते हैं, और इस प्रकार जनमत विकृत होता है। सरकारी नीति क्योंकि अनिवार्य तौर पर जनमत का/के लिए "वाहक" होता है, इसलिए नीतियाँ विकृत हो जाती हैं, क्योंकि वास्तविक सरोकार तो पीछे रह जाते हैं और बयानबाजी

हावी रहती है। इससे, एक संस्था के रूप में स्वयं लोकतंत्र पर ही सवाल खड़े हो जाते हैं। इसलिए, जनमत-निर्माण हेतु सहायक वातावरण के सृजन के लिए यह आवश्यक है कि निहित स्वार्थों में जानबूझ कर "गलत सूचना" देने की मौजूदा प्रवृत्ति को रोका जाए, और इसके लिए हितों को मुखर करने और विशेषकर सूचना के हस्तांतरण की प्रक्रिया की ओर ध्यान देना होगा। गलत सूचना के अतिरिक्त, सूचना का अभाव भी एक समस्या है जिससे निपटना होगा। इसके लिए, सूचना प्रौद्योगिकी और विशेषकर ई-गवर्नेन्स पर ज़ोर देने वाली शिक्षा जैसे उपाय करने होंगे, और ई-गवर्नेन्स सम्बन्धी मामलों में नागरिक समाज की असरदार आवाज के लिए राजनीतिक गुंजाइश बनानी होगी। शासन (गवर्नेन्स) की "एककेन्द्रित" प्रकृति को तोड़ने के लिए नागरिक समाज अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि "चीजों को करने" के अन्य तरीकों के विकल्प खुले नहीं हैं। निजी क्षेत्र और जन सहकारिताओं को इस समय ग्राम विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। भविष्य में, विशेषकर निजी क्षेत्र को कृषि उपज के विपणन और बीमा के क्षेत्र में विशेष भूमिका निभानी है। अभी तो निजी क्षेत्र और जनसहकारिता, दोनों को ही फिर से खड़ा करने की आवश्यकता है। नई प्रौद्योगिकी को लागू करना भी नागरिक समाज की मिली-जुली ज़िम्मेदारी है जिसमें निजी निगमित (कार्पोरेट) क्षेत्र भी शामिल है, क्योंकि आने वाले वर्षों में नागरिक समाज के लिए राजनीतिक स्थान और व्यापक हो जाएगा और वैश्विक आयाम प्राप्त कर लेगा; ऐसा भारत जैसे विकासशील देशों में भी होगा जहाँ इस सिलसिले में पहले ही भविष्यवाणियाँ होने लगी हैं। इससे लोगों को अपने हितों को और भी असरदार ढंग से मुखर करने की शक्ति मिलेगी और उन्हें नीति निर्माताओं तक पहुँचाने के रास्ते भी मिलेंगे। इसकी परिणति "निष्पक्ष" अथवा "उचित" नीतियों में होगी, क्योंकि "युक्तिपूर्णता" तो बयानबाजी की कीमत पर आगे बढ़ेगी और अगर लोकतंत्र अपने आपको बयानबाजी पर आधारित गलत सूचना के प्रकोप से बचाना चाहता है तो यह बेहद ज़रूरी होगा। और फिर, अब यह मान्य तथ्य है कि अच्छी नीतियाँ तो लागू होती ही हैं।

21.7 मुख्य अवधारणाएँ

क्षमता (Capacity) : क्षमता प्रदत चीज से अनुकूलन करने या मेल स्थापित करने की शक्ति/गुजाइंश है। यदि परिवर्तन व्यवस्था में समाहित न हो सकें तो उन्हें व्यर्थ समझा जाता है। डॉ. अमर्त्य सेन मानव संसाधन विकास उपाय जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और मानवीय वृद्दि के लिए अधिक सुरक्षित पर्यावरण आदि सहज उपलब्ध कराने के द्वारा क्षमता विकास की सिफारिश करता है। केवल इसी के बाद ही व्यवस्था संबंधी परिवर्तन जैसे उदारीकरण या भूमंडलीकरण के अपेक्षित प्रभाव प्राप्त हो सकते हैं।

सामुदायिक नीति निर्माण (Community Policying) : समुदायिक नीति निर्माण उस पारंपरिक प्रतिक्रिया के विपरीत नीति निर्माण की अनुकूल नीति है जो अपराध का सामना करने में अधिक सफल नहीं थी। लोग क्षेत्र निगरानी समितियों या पड़ोस निगरानी समितियों में संगठित होकर प्रशासन के साथ अधिक संपर्क रखकर कार्य करने लगे।

एकल अभिकेन्द्रित (Monocentric) : जब सरकार किसी प्रतिस्पर्धी या भागीदारी के बिना वस्तुओं और सेवाओं को प्रदान करती हो तो शासन एकल अभिकेन्द्रित प्रकृति का कहा जाता है। एकल अभिकेन्द्रित के विपरीत बहु-अभिकेन्द्रित होता है जहाँ वस्तु और सेवाओं के प्रदाताओं का विकल्प होता है।

कुलीन तंत्र (Oligarchric) : कुलीन तंत्र का अभिप्राय है राजनीतिक शक्ति का केन्द्रीकरण कुछ लोगों के हाथ में होना। कुलीनतंत्र उस सामाजिक व्यवस्था को दर्शाता है जहाँ कुछ लोग शक्तियों पर नियंत्रण रखतें हैं और अल्पसंख्यकों की इच्छाओं का दमन किया जाता है।

गुटतंत्र (Oligopolistic) : गुटतंत्र का अभिप्राय है जब कुछ विक्रेता परस्पर संपर्क के द्वारा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हैं ताकि बाजार पर उनका नियंत्रण हो जाए। वे आम उपभोक्ता की हानि कर बाजार स्थिति को प्रभावित करते हैं। यहाँ गुटतंत्र का अर्थ वह सामाजिक व्यवस्था है जहाँ दूसरों की कीमत पर कुछ लोगों द्वारा आर्थिक अधिकार असमान रूप से अपने पास नियंत्रित कर लिए जाते हैं।

21.8 संदर्भ व अन्य लेख

वाजपेयी, अशोक और एम. एस. वर्मा, 1995, *पंचायती राज इन इंडिया : ए न्यू थ्रस्ट,* साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, भारत।

बेहड़ा, भागीरथ, 2005, *"हू फॉर्म्स लोकल इंस्टीट्यूशन्स, लेवल्स ऑफ हाउसहोल्ड पार्टीसिपेशन इन इंडियाज़ जॉइंट फॉरेस्ट मैनेजमेंट प्रोग्राम",* पीएच. डी. शोध प्रबंध, स्टेफानी, एंगल (गाइड) विकास शोध केन्द्र, बॉन विश्वविद्यालय, जर्मनी, रॉबर्ट बॉश फाउंडेशन (फंडिंग)।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07।

होल्ज़र, मार्क, मेंगज़ोंग ज़ांग, कियोंग, दोंग (मुख्य संपा.) 2004, "फ्रंटियर्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन", द्वितीय चीन-अमेरिका अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यवाही, *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन दी चेंजिंग वर्ल्ड,* बीजिंग, चीन, यूनाइटेड नेशन्स पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन नेटवर्क, न्यूयार्क और अमेरिकन सोसाइटी फार पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाशिंगटन, डी.सी. द्वारा प्रकाशित।

होल्ज़र, मार्क, सियांग-ताए किम, 2005, "डिजिटल गवर्नेन्स इन म्यूनिस्पैलिटीज़, वर्ल्डवाइड ए लौंगीट्यूडनल असैसमेंट ऑफ म्युनिस्पैलिटीज़" थ्रू आउट दी वर्ल्ड", सह-प्रायोजक, लोक प्रशासन तथा विकास प्रबंधन प्रभाग, आर्थिक तथा सामाजिक मामलों का विभाग, संयुक्त राष्ट्र, और अमेरिकन सोसाइटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, (ए.एस.पी.ए.), ए.एस.पी.ए., ऑन लाइन।

आई. सी. एस. एस. आर., 1975, *ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* खण्ड 2, एलाइड पब्लिशर्स।

कुमार, एस. तथा एस. कांत, 2005, "ब्यूरोक्रेसी एंड न्यू मैनेजमेंट पैराडिग्मज़, मॉडलिंग फारेस्टर्स पर्सेप्शन रिगार्डिंग कम्यूनिटी – बेस्ड फॉरेस्ट मैनेजमेंट इन इंडिया", *फॉरेस्ट पॉलिसी एंड इकॉनामिक्स,* 7(4)।

मुखर्जी, डोएल, 2005, *"कम्यूनिटी पॉलिसिंग इनीशिएटिव्स, आउटरीच प्रोग्राम्स इन इंडिया",* वेबसाइट http://www.doel@humanrightsinitiative.org. पर ऑन लाइन पढ़ें।

नायक, प्रमोद कुमार, एस. सेन तथा जी. एस. मनसुखलाल, 1997, यूनिक क्विंटसेंस ऑफ इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

राजस्थान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट प्रोजेक्ट, वेबसाइट http://www.ruidp.org पर ऑन लाइन पढ़ें।

रिपोर्ट ऑफ दी कमिटी ऑफ डेमोक्रैटिक डिसेंट्रलाइजेशन, 1961, सहकारिता तथा ग्राम विकास विभाग, महाराष्ट्र सरकार।

सेन, अमर्त्य, 1990, *डेवलपमेंट एज फ्रीडम,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पब्लिशिंग हाउस।

21.9 अभ्यास

1) स्थानीय स्तर पर क्षमता-निर्माण के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

2) स्थानीय स्तर पर क्षमता-निर्माण में ई-गवर्नेन्स के महत्त्व को समझाइए।

इकाई 22 सतत् विकास और विकेन्द्रीकृत शासन की चुनौतियाँ

रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 सतत् विकास क्या है?

22.3 सतत् विकास और शासन के अंतरसम्बन्ध

22.4 शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् विकास

- 22.4.1 बुनियादी सुविधाएँ
- 22.4.2 गरीबी में कमी और अच्छा जीवन स्तर
- 22.4.3 आय सृजन

22.5 सतत् विकास और पर्यावरण की चुनौतियाँ

- 22.5.1 वनोन्मूलन
- 22.5.2 जैव विविधता के लिए खतरा
- 22.5.3 जलवायु परिवर्तन के प्रभाव
- 22.5.4 प्रदूषण के स्तरों में वृद्धि
- 22.5.5 भूजल स्तर में गिरावट अथवा उसका ह्रास और प्रदूषण
- 22.5.6 खराब स्वास्थ्य
- 22.5.7 साक्षरता दर
- 22.5.8 पर्यावरणीय सततता

22.6 राज्य की ज़िम्मेदारियाँ

- 22.6.1 राज्य स्तर तक नीतिगत ढाँचा
- 22.6.2 जिला स्तरीय प्रयास और पंचायतों की भूमिका
- 22.6.3 शहरी पर्यावरण का प्रबंधन
- 22.6.4 स्थानीय समुदायों की भूमिका

22.7 कार्यान्वयन की कार्यनीतियाँ

- 22.7.1 कार्य
- 22.7.2 कर्मी
- 22.7.3 वित्त

22.8 सारांश

22.9 मुख्य अवधारणाएँ

22.10 संदर्भ व अन्य लेख

22.11 अभ्यास

22.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- सतत् विकास (Sustainable Development) को परिभाषित कर सकेंगे;
- सतत् विकास और शासन (Governance) के अंतरसम्बन्ध को समझा सकेंगे;
- सतत् विकास में राज्य और स्थानीय निकायों की ज़िम्मेदारियों की विवेचना कर सकेंगे; और
- कार्यान्वयन की कार्यनीतियों (Implement-ation Strategies) के बारे में बता सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

पिछले डेढ़ दशक से, विश्व के तमाम राष्ट्र-राज्यों की अधिकांश नीतियों और कार्यक्रमों में "सतत् विकास" एक अनिवार्य शब्द बना हुआ है। रियो पृथ्वी सम्मेलन को एक महत्त्वपूर्ण बैठक माना गया है, जिसका लक्ष्य सतत् विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा की प्राप्ति की दिशा में प्रयासों को तेज़ करना है। हम अक्सर ग्लोबल वार्मिंग, पर्यावरण ह्रास, संसाधनों की कमी और जलाभाव, वायु, जल तथा भूमि के प्रदूषण, पिघलते हिमनदों, अथवा आजीविका के साधनों की तलाश में लोगों का बड़ी संख्या में गाँवों से शहरों की ओर पलायन के बारे में सुनते अथवा पढ़ते हैं। ये मुद्दे इतने प्रमुख क्यों हो गए हैं? राष्ट्रों के लिए अपनी नीतियों और शासन में सतत् विकास के पहलू को शामिल करना इतना महत्त्वपूर्ण क्यों हो गया है? भारत भी विभिन्न बहुपक्षीय समझौतों के माध्यम से इस लक्ष्य की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाता रहा है और उसने अपने शासनिक मामलों में इसे एक केन्द्रीय विषय बनाया है। संसाधनों का प्रबंधन कहने के लिए तो आसान है किन्तु यह करने में कठिन है। इसमें केन्द्र ही नहीं अपितु राज्य स्तर पर भी सतत् विकास के लक्ष्य को शासन तथा विशेषकर विकेन्द्रीकृत शासन के साथ एकीकृत करने के तौर-तरीकों को निर्धारित करने के लिए भारी प्रयासों की आवश्यकता होती है। सकारात्मक दृष्टि से देखें तो, विकेन्द्रीकृत शासन इन रचनात्मक लक्ष्यों को राष्ट्रीय नीति के साथ-साथ प्राप्त करने में अत्यधिक सहायक हो सकता है। भारत में यह एक चालू प्रक्रिया है। राष्ट्र पर इसके प्रभाव को आँकने में निश्चय ही काफी लंबा समय लगेगा। इसी पृष्ठभूमि में, यह इकाई इन प्रश्नों के जवाब ढूँढ़ने का प्रयास करती है कि सतत् विकास क्या है और विकेन्द्रीकृत शासन के माध्यम से इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

22.2 सतत् विकास क्या है?

ब्रूंटलांट आयोग की रिपोर्ट "*अवर कॉमन फ्यूचर*" (*Our Common Future*) (1987) के अनुसार, सतत् विकास की परिभाषा इस प्रकार है: "वह विकास जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की भावी पीढ़ियों की योग्यता से समझौता किए बग़ैर वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।" सतत् विकास से सम्बन्धित यह एक सर्वाधिक प्रयुक्त परिभाषा है। तब से ऐसी ही अनेक परिभाषाएँ बनाई गई हैं जिनमें "सहायक पारिस्थितिकी तंत्रों (Supporting Ecosystems) की वाहक क्षमता के भीतर रहते हुए मानव जीवन की गुणवत्ता सुधारने" पर जोर दिया गया है अथवा कहा गया है कि यह वह "विकास है जिसमें आर्थिक और सामाजिक विकास सम्मिलित हैं जो प्राकृतिक पर्यावरण और सामाजिक साम्य का संरक्षण और संवर्धन करते हैं"। विश्व संरक्षण कार्यनीति रिपोर्ट (World Conservation Strategy Report) के अनुसार, सतत् विकास की परिभाषा इस प्रकार है: "संरक्षण और विकास का एकीकरण, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि भूमण्डलीय सुधारों से सभी लोगों का अस्तित्व और कल्याण सुरक्षित होगा ही"। परिभाषा चाहे जो भी हो, यह उस विकास का वाहक है जिसे प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित

शोषण किए बग़ैर ही प्राप्त किया जा सकता है। लंबे समय तक, मानव यह मानकर चलता रहा कि प्रकृति की संपदा तो अपार है और उसका अंधाधुंध दोहन किया जा सकता है। इस तरह, संसाधनों का दोहन परिणामों की चिंता किए बग़ैर चलता रहा जब तक कि उसकी समझ में नहीं आया कि संसाधनों का दोहन सचमुच आवश्यकता से अधिक हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने एक सम्मेलन बुलाया जिसका लक्ष्य इस बुराई को रोकना और प्रकृति की क्षमता की बहाली के लिए एक कार्यक्रम बनाना था।

पर्यावरण के इन खतरों का पहला आवाहन 1960 के दशक के आरंभ में ही हो गया था। इस दौरान एक नया पर्यावरण आंदोलन उभरा जिसकी प्रेरणा रेचल कारसन (Rachel Carson) की पुस्तक "*साइलेंट स्प्रिंग*" (*Silent Spring*) से मिली; इस पुस्तक में विश्व का ध्यान डी.डी.टी. (DDT) नामक कीटनाशक के प्रयोग से वन्यजीवन को होने वाले विनाश की ओर खींचा गया था। इस पुस्तक के माध्यम से, लेखिका ने चेतावनी दी थी कि इन रसायनों में एक मरती दुनिया की संभावना है जो अब नया जीवन नहीं प्रदान करेगी बल्कि सिर्फ खामोशी ही देगी। कारसन ने इसमें उजागर किया कि जब हम उन प्राकृतिक व्यवस्थाओं में दखल देते हैं जिन्हें हम पूरे तौर पर नहीं समझते, तो हमारे कृत्यों के अत्यधिक गंभीर परिणाम सामने आ सकते हैं। इन मुद्दों को लेकर समय-समय पर बैठकें हुई जिनमें 1972 का स्टॉकहोम सम्मेलन" भी था, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1983 में नार्वे की प्रधानमंत्री श्रीमती ग्रो हार्लेम ब्रूटलैण्ड (Mrs. Gro Harlem Brundtland) की अध्यक्षता में पर्यावरण तथा विकास पर विश्व आयोग (World Commission on Environment and Development; WCED) का गठन किया। *हमारा साझा भविष्य* (*Our Common Future*) रिपोर्ट इसी आयोग की देन थी। इस रिपोर्ट की केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में राज्य की आर्थिक नीतियाँ तय करने से पहले पर्यावरणीय संसाधन की सीमाओं पर विचार करने के महत्त्व पर जोर दिया गया। इस प्रकार, यह ज़रूरत महसूस की गई कि परिवर्तन और अर्थशास्त्र का एकीकरण इस समन्वित ढंग से किया जाए कि इन दोनों पर इसका कोई विनाशकारी प्रभाव न हो।

बाज़ार द्वारा संचालित अर्थव्यवस्थाओं और भूमंडलीकरण के इस दौर में, विभिन्न राष्ट्रों के बीच अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए जबरदस्त होड़ है। इस अनुचित होड़ का नतीजा विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय उपयोग के रूप में सामने आया है। विकासशील देश तो विशेषकर अपने संसाधनों का प्रयोग बिना मितव्ययिता के करने को बाध्य हैं, जबकि गरीबी का स्तर जस का तस रहा, वहीं अनेक देशों में विकास हुआ ही नहीं। इसे ध्यान में रखते हुए, ब्रुंटलैण्ड आयोग में यह तर्क दिया कि घोर गरीबी से युक्त विश्व में लोग अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों का गलत उपयोग करने को बाध्य हैं; अस्तित्व बचाने के लिए ऐसे साधनों का नतीजा अस्वास्थ्यकर (सेहत के लिए नुकसानदेह) पर्यावरण के रूप में सामने आता है। इसलिए, प्राकृतिक संसाधनों के सहज पोषण के साथ लोगों का कल्याण ही विकास की कुंजी है।

मानव आवश्यकताओं के दो आयाम हैं: (1) भोजन, वस्त्र, आवास और एक स्वच्छ पर्यावरण जैसी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति; और (2) भौतिक सुख सुविधाओं के संदर्भ में एक इच्छित जीवन शैली का विकल्प। विकसित देश जल्दी औद्योगिकीकरण करके अपने लोगों को ये सुख-सुविधाएँ देने में कामयाब रहे। विकासशील देश उस उन्नत प्रौद्योगिकी को प्राप्त नहीं कर पाए हैं जिससे उनके नागरिकों के लिए बेहतर रहन-सहन सुनिश्चित हो सके। आज भी, उन्हें उस तकनीकी ज्ञान की दरकार है, जिससे उन्हें अच्छा जीवन ही नहीं बल्कि आर्थिक रूप से सक्षम जीवन भी मिलेगा। इन देशों के पास प्रचुर प्राकृतिक संसाधन हैं किन्तु उनके पास यह ज्ञान नहीं है कि पर्यावरण की दृष्टि से उन्हें सतत् प्रौद्योगिकी और उपकरणों में कैसे बदला जाए। इस संदर्भ में, दूसरा विकल्प, अर्थात् अपनी स्वयं की जीवन शैली चुनने का विकल्प, एक व्यक्तिनिष्ठ विकल्प बन जाता है। एक अच्छी शासनिक कार्यनीति एक बेहतर जीवन स्तर का वादा करती है और इसे प्राप्त कैसे किया जाएगा यह सरकार द्वारा अपनाए

गए एकीकृत दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। इस प्रकार, दोनों पहलुओं के बीच एक सविराम सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

22.3 सतत् विकास और शासन के अंतरसम्बन्ध

राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट (National Human Development Report) (2001) के अनुसार, "मानव विकास हेतु शासन का सम्बन्ध ऐसी समस्त प्रक्रियाओं के प्रबंधन से है जो, किसी भी समाज में, पर्यावरण को परिभाषित करती हैं जिससे एक ओर तो व्यक्तियों को अपने क्षमता स्तर को बढ़ाने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और दूसरी ओर उन्हें अपनी क्षमता को पहचानने और उपलब्ध विकल्पों के दायरे को बड़ा करने के अवसर मिलते हैं।" रिपोर्ट में यह बात भी दोहराई गई है कि व्यक्तिगत क्षमताओं के निर्माण और निजी पहल के प्रोत्साहन के लिए एक अनुकूल राजनीतिक, कानूनी और आर्थिक वातावरण बनाने हेतु राज्य ज़िम्मेदार है। इसलिए, शासन की राज्यों से दरकार है कि वे विभिन्न मनोनीत निकायों के माध्यम से अपनी शक्ति का इस्तेमाल करें और एक ऐसे समतामूलक, सामाजिक दृष्टि से प्रवण, भेदभाव रहित और सहभागीय दृष्टिकोण के माध्यम से कथित लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास करें जिसमें जनता को व्यापक स्तर पर शामिल किया जाए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक शासन में राज्य की जवाबदेही है। जहाँ पाश्चात्य देशों ने अपने शासन में इसे सफलतापूर्वक शामिल किया है, वहीं भारत में राज्य की जवाबदेही कमोबेश नगण्य है। शासन की अच्छी नीतियों और कार्यनीतियों की प्रासंगिकता तब समाप्त हो जाती है जब राज्य की जवाबदेही सम्बन्धी कारक की परवाह ही नहीं की जाती और उसमें राष्ट्रवासियों की आकांक्षाओं का प्रतिबिम्बन नहीं होता।

सतत् शासन हेतु शासन में विकास की कार्यनीति में आर्थिक और पर्यावरणीय सरोकारों का एक एकीकृत दृष्टिकोण शामिल होना चाहिए, जिसमें केवल नागरिकों को दिए जाने वाले जीवन स्तर का ही नहीं बल्कि "सामाजिक साम्य" को लक्षित एक समान वितरण का भी ध्यान रखा जाए। शासन को चाहिए कि वह नागरिक के विकास के अधिकार की भी रक्षा करे और साथ-ही-साथ पर्यावरण के सरोकारों को भी उच्च वरीयता प्रदान करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु लोकतंत्र, स्वायत्तता, निष्पक्षता, अंतरनिर्भरता, ज़िम्मेदारी और जवाबदेही आवश्यक है (एकीकृत पर्यावरणीय प्रबंधन, इग्नू, नई दिल्ली, 2005)। कोई सरकार समाज की बेहतरी के लिए अपनी नीतियाँ और कार्यक्रम बनाए, उससे पहले उसे इन गुणों का समावेश करना चाहिए। उपर्युक्त आवश्यकताओं से सम्बन्धित अनेक गुण हैं: (1) लोकतांत्रिक सरकार के पास विभिन्न तंत्र और संस्थाएँ होती हैं जो नागरिकों की व्यवस्था में हिस्सेदारी हेतु कुछ मौलिक अधिकार प्रदान करती हैं; (2) विकास के विकल्पों का निर्धारण जनता और सरकार को मिलकर थोड़ी-बहुत स्वायत्तता के साथ करना चाहिए; (3) पृथ्वी के संसाधनों को समतामूलक ढंग से बनाए रखने और परस्पर बाँटने की आवश्यकता है। जो असमानताएँ विद्यमान हैं उन्हें गरीबी-उन्मूलन के उपायों और लोगों को शिक्षित करने के माध्यम से कम करने की आवश्यकता है। जहाँ संसाधनों को भावी पीढ़ियों के पक्ष में बिना इस्तेमाल किए छोड़ा जा सकता है, वहाँ अत्यंत निष्पक्षता से काम लेना होगा; (4) भूमंडलीकरण के बढ़ते स्तर के साथ, राष्ट्रों में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, विकास परियोजनाओं हेतु सहायता देने और सहयोग करने के मामलों में अंतर निर्भरता होनी चाहिए। यह स्थानीय, क्षेत्रीय और प्रादेशिक सीमाओं तक ही सीमित न रहे ताकि साझा समस्याओं का समाधान सौहार्दपूर्ण ढंग से हो सके; (5) प्रत्येक नागरिक की यह ज़िम्मेदारी है कि वह पर्यावरण का संरक्षण और बचाव करे और साथ ही नागरिकों के हितों को भी नुकसान पहुँचाएँ बगैर विकास का लक्ष्य प्राप्त करे। इतनी ही ज़िम्मेदारी सरकार की भी है कि वह जहाँ आवश्यक हो पर्यावरण को होने वाली क्षति पर नियंत्रण करे और प्राकृतिक पर्यावरण को होने वाले किसी भी नुकसान को रोके; (6) भूमंडलीय पर्यावरण में प्रत्येक राष्ट्र की भागीदारी है और उसे साझा लाभों में हिस्सेदारी का हक है। जानबूझकर अथवा अनजाने में होने वाले नुकसानों के प्रति भी उसकी जवाबदेही है, और इस तरह की घटनाओं

के होने पर मुआवज़ा देना भी उसका दायित्व है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी तरह से प्राकृतिक पर्यावरण का रक्षक है।

22.4 शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् विकास

सतत् विकास के कुछ मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

- जैव-विविधता (Biological diversity) और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
- पर्यावरण को हानिकारक प्रभावों से बचाना
- पर्यावरण और अर्थव्यवस्था का एकीकरण
- पर्यावरण सुरक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम
- सहकारी और सहभागी दृष्टिकोण।

इस प्रकार, शासन और सतत् विकास में एक पूर्व नियत सम्बन्ध है; पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकूल प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से समाज, पारिस्थितिकीय और अर्थशास्त्र की गतिशील शक्तियों को एकीकृत करने की आवश्यकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास को बनाए रखने हेतु बुनियादी सुविधाएँ और अच्छा जीवन स्तर उपलब्ध कराया जाए।

पंचायती राज संस्थाओं (Panchayati Raj Institutions; PRIs) के माध्यम से अच्छे विकेन्द्रीकृत शासन की दिशा में प्रयास होने के बावजूद, जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की भोजन, पानी तथा आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं की जा रही हैं। अनेक प्रयास हुए, किन्तु सरकारी समर्थन में विलंब और पहल के अभाव में विफल हो गए। बुनियादी सुविधाओं, अच्छा जीवन स्तर और आय सृजन् की व्यवस्था तो अच्छे शासन का एक अति महत्त्वपूर्ण पहलू है। जिन राज्यों के बारे में कहा जाता है कि वहाँ विकास का स्तर बढ़ रहा है, वहाँ भी लचर शासन के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने मानव विकास के संदर्भ में खाइयों को चौड़ा कर दिया है।

22.4.1 बुनियादी सुविधाएँ

एक अच्छे जीवन की बुनियादी सुविधाएँ भोजन, आवास और वस्त्र हैं और यह सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह अपने नागरिकों को ये सुविधाएँ उपलब्ध कराए। इसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समान रूप में लागू होना चाहिए। इसे मानव विकास भी कहते हैं और इसके दायरे में स्वास्थ्य सेवाएँ तथा स्वच्छता की सुविधाएँ प्रदान करना और गरीबी हटाना भी आता है। संयुक्त राष्ट्र ने सहस्राब्दी के विकास सम्बन्धी लक्ष्य (*Milliennium Development Goals*; MDGs) पर एक अवधारणा पत्र (Concept Paper) भी प्रकाशित किया है जिसका उद्देश्य पूरी दुनिया में एक नियत अवधि में लोगों को बढ़िया जीवन स्तर उपलब्ध कराने के लक्ष्य को प्राप्त करना है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने तो विभिन्न राष्ट्रों को कुछ लाभ पहुँचाए ही हैं, जिनमें भारत भी शामिल है। किन्तु, यह देखकर निराशा होती है कि इनमें से अनेक लाभ समाज के अनेक पृथक तबकों तक नहीं पहुँचे हैं। कई गरीबों को तो आज भी एक समय (जून) की रोटी नहीं मिलती है और वे अक्सर ही विस्थापन और प्राकृतिक आपदाओं के कारण बेघर हो जाते हैं। गाँवों की औरतों को पानी के लिए अक्सर 10-15 किमी. चलना पड़ता है। ग्रामीण जन निकटतम स्वास्थ्य केन्द्र तक पहुँचने के लिए भी 15 किमी. से अधिक की दूरी तय करते हैं। उन्हें अस्वच्छ वातावरण में रहना पड़ता है और वे संक्रामक रोगों के भी शिकार हो जाते हैं; उन्हें अक्सर आजीविका के लिए पर्यावरण की दृष्टि से विनाशकारी गतिविधियों में भी लिप्त होना पड़ता है।

शहरी क्षेत्रों में स्थिति कोई बेहतर नहीं है। वहाँ भी कई लोग शहरी मलिन बस्तियों में रहते हैं। इनमें अधिकांश वे लोग होते हैं जो रोजी-रोटी की तलाश में अपना पैतृक गाँव या कस्बा छोड़कर शहरों में चले आते हैं। इस तरह शहरी निकायों के लिए अपनी जनसंख्या को निरंतर बिजली अथवा पानी देना अथवा बेहतर परिवहन व्यवस्था उपलब्ध करना एक बोझ बन जाता है। इनमें सबसे अधिक परेशानी मज़दूर वर्ग को होती है; लोगों को बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने हेतु संसाधनों का प्रबंध करना स्थानीय सरकारों के लिए कठिन हो जाता है। इन सुविधाओं के अभाव में व्यक्ति का कल्याण और भरण-पोषण का अधिकार भंग होता है। यह बेमेल समीकरणों का एक स्पष्ट उदाहरण हैं, जहाँ, सामाजिक सूचकों के अनुसार, लोगों की क्षमता और उपलब्ध संसाधन मेल नहीं खाते।

22.4.2 गरीबी में कमी और अच्छा जीवन स्तर

अच्छे जीवन स्तर का कमोबेश मतलब है गरीबी में कमी। जहाँ गरीबी कम करना/हटाना सहस्राब्दी के विकास सम्बन्धी लक्ष्यों का एक हिस्सा है, वहीं गरीबी न्यूनीकरण कार्यक्रमों में पर्यावरण और सतत् विकास के एकीकरण के उपायों का भी विकेन्द्रीकृत शासन के लिए अत्यधिक महत्त्व है। एक अच्छे जीवन स्तर का निर्धारण आमदनी के उच्चतर स्तर और जीवन संभाविता के एक उच्चतर स्तर की प्राप्ति, उच्चतर साक्षरता और मानव विकास सूचक के अनुसार उच्चतर मूल्य के संदर्भ में होता है। इस प्रगति की परिणति स्वतः ही सकल राष्ट्रीय उत्पाद का स्तर बढ़ने में होती है, और फिर इसका असर उच्चतर सार्वजनिक व्यय और गरीबी के निम्नतर स्तर पर पड़ता है। इस तरह, यह प्रक्रिया चक्करदार और अंतरसंबंधित है। गरीबी कम करने के उपायों के लिए सरकार की ओर से बड़ी पहल ज़रूरी होती है; इसकी प्रभाविता के लिए ज़रूरी होता है कि महत्त्वपूर्ण जनोन्मुखी लाभकारी काम किए जाएँ, नीतियों में बदलाव लाया जाए, और संस्थाओं को सुधारा जाए। इन्हें भागीदारी के तरीके से तैयार करना चाहिए और इसमें सभी स्तरों पर लोगों को शामिल किया जाना चाहिए। किन्तु इन लक्ष्यों और भौतिक सम्पन्नता के बीच स्पष्ट अंतर करना चाहिए, क्योंकि इधर कुछ समय से भौतिक संपन्नता को ही एक बढ़िया जीवन स्तर की अनिवार्य विशेषता समझा जा रहा है।

22.4.3 आय सृजन

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, विकास के संदर्भ में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में काफी असमानताएँ हैं। काफी लोग गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में सतत् विकास और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कोई सरकार अपनी जनता को रोजी-रोटी कमाने के कौन-से विकल्प दे सकती है? वह आय सृजन के लिए कौन-सी योजनाएँ चला सकती हैं? शहरी क्षेत्रों को आय सृजन के संभावित स्रोतों के रूप में देखा जाता है क्योंकि वहाँ अभियंत्रण, भारी धातु, वस्त्र और सॉफ्टवेयर जैसे अनेक उद्योगों का जमाव होता है। जहाँ शहरी इलाकों को उनके औद्योगिक आधार और तकनीकी अवसरों के कारण पसंद किया जाता है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों के पास बहुत ही कम विकल्प बचे रह जाते हैं और उनको लागू करने के लिए भी कार्यनीतियों का अभाव होता है। हालाँकि कृषि ग्रामीण क्षेत्रों में एक प्रधान व्यवसाय है, फिर भी इस क्षेत्र को वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए फिर से खड़ा करने की दिशा में पर्याप्त कदम नहीं उठाए गए हैं; और जहाँ उपाय किए भी गए हैं, वहाँ प्राकृतिक संपदा का अनुचित दोहन आज भी जारी है। इसके परिणामस्वरूप, लोग भारी संख्या में गाँव छोड़कर शहरों में चले गए हैं। इससे काम के अवसर उपलब्ध कराने और आय के समुचित स्तर सृजित करने के संदर्भ में गंभीर संकट पैदा हो गया है। रोजी-रोटी की आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास में व्यापक किस्म के प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव पड़ा है। हालाँकि सतत् मानव विकास के सम्बन्ध में विविध प्रयास किए गए हैं, फिर भी अपेक्षित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय का सृजन नहीं हुआ।

22.5 सतत् विकास और पर्यावरण की चुनौतियाँ

भारत में सतत् विकास के समक्ष असंख्य चुनौतियाँ हैं। जहाँ इनमें से अनेक समस्याओं का कारण प्राकृतिक संसाधनों का संवेदनहीन उपयोग है, वहीं सरकार भी खास मुद्दों को सुलझाने में रुचिशील नहीं रही है। पर्यावरण के इस ह्रास का व्यक्तियों के जीवन पर सीधा असर पड़ा है और जीवन की दीर्घता प्रभावित हुई है, जिससे समूची विकास प्रक्रिया ही प्रभावित होती है। जब मिट्टी की गुणवत्ता हल्की हो, जलाशयों का स्तर गिर जाए, वन कम हो जाएँ, शहरी पर्यावरण दूषित होता जाए और पारिस्थितिकी तंत्र नष्ट हो जाए, तो यह आशा नहीं की जा सकती कि वे भविष्य में बेहतर जीवन स्तर अथवा जीवन की बेहतर गुणवत्ता का आधार बन पाएँगे। चुनौतियाँ प्राकृतिक भी हैं और मानव जनित भी, और वे इस प्रकार हैं :

22.5.1 वनोन्मूलन

भारत और शेष दुनिया में भी वन संसाधन विनाश के कगार पर हैं और खतरनाक स्तर पर पहुँच रहे हैं। बर्बादी के इस संकट के लिए व्यक्ति, निगम, सरकारी संगठन आदि ज़िम्मेदार हैं। विकास परियोजनाओं के नाम पर, पेड़ों को काटा जा रहा है और इस तरह सतत् विकास तथा मानव प्रगति के लक्ष्य पीछे छूट रहे हैं। वनोन्मूलन की सर्वाधिक गंभीर समस्या जैव-विविधता का ह्रास है। वनों का विनाश होने से न केवल पशुओं की प्रजातियाँ बल्कि वृक्षों की अनेक किस्में भी नष्ट हो जाती हैं जिनमें अनेक औषधीय गुण होते हैं। यह ग्लोबल वॉर्मिंग के लिए भी काफी हद तक ज़िम्मेदार है।

22.5.2 जैव विविधता के लिए खतरा

पृथ्वी की जैव विविधता एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संपदा है जिसे समझदारी से संरक्षित और इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। इन संसाधनों की निष्पक्ष और समान हिस्सेदारी अच्छे जीवन की मूल शर्त है। पर्यावरण के भारी विनाश, भूमि, जल और मिट्टी के प्रदूषण का जैव विविधता के अस्तित्व पर जबरदस्त असर पड़ा है। जैव संसाधन, अंधाधुंध इस्तेमाल के कारण, विलुप्त होने के कगार पर हैं। हालाँकि अतिशय उपयोग पर गंभीरता से प्रतिबंध लगाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है, फिर भी सामूहिक इच्छा शक्ति के अभाव ने सतत् विकास की प्रक्रिया को व्यापक तौर पर बाधित किया है।

22.5.3 जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु में हुए भारी बदलावों के परिणामस्वरूप मानव स्वास्थ्य की स्थितियों और भूमंडलीय संसाधनों में गिरावट आई है। इन्होंने समाज के सामाजिक और पर्यावरणीय पक्षों पर भी गंभीर प्रभाव छोड़े हैं। बढ़ते तापमान और कार्बन उत्सर्जन का गंभीर प्रभाव फसलों के खराब होने, बाढ़ों के अधिक आने, खाद्य आपूर्ति में कमी, छूत की बीमारियों, पर्यावरण का स्तर गिरने और सूखा अधिक पड़ने के रूप में सामने आया है। आपदा प्रबंधन के तरीकों की कमी होने और नीति निर्माण में स्थानीय समुदायों को विधिवत् ढंग से हाशिए पर धकेले जाने से प्राकृतिक और अप्राकृतिक अथवा मानव-जनित आपदाओं के प्रति प्रवणता में बढ़ोतरी हुई है।

22.5.4 प्रदूषण के स्तरों में वृद्धि

हवा की गुणवत्ता के गिरते स्तरों को, विशेषकर शहरी इलाकों में, प्रदूषण का एक प्रमुख कारक माना जाता है। वायु प्रदूषण के स्रोतों में औद्योगिक प्रदूषण, अंतरंग और वाहन प्रदूषण शामिल हैं। शहरी क्षेत्रों में प्रदूषण का कारण उन असंख्य उद्योगों की उपस्थिति है, जो हवा में धुआँ और अन्य रासायनिक तत्व छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त वाहनों से होने वाला प्रदूषण भी है जो हर साल बढ़ता ही जा रहा है। वाहनों की बिक्री में आशातीत वृद्धि हो रही है और इससे वाहनों की भीड़-भाड़ बढ़ रही है। इससे हमेशा

ही दमा, सांस लेने में परेशानी, सुनने की शक्ति में कमी जैसे स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरे पैदा हो रहे हैं। अंतरंग प्रदूषण का कारण लकड़ी, गोबर के उपलों और फसलों के अवशिष्ट का इस्तेमाल है। बच्चों और उनमें भी विशेषकर लड़कियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जोखिम अधिक बताया जाता है क्योंकि वे घर के अंदर ही रहकर घर के कामों में महिलाओं का हाथ बटाँती हैं।

22.5.5 भूजल स्तर में गिरावट अथवा उसका ह्रास और प्रदूषण

जहाँ पानी की कमी की समस्या गहरी बनी हुई है, वहीं पानी का अपर्याप्त इस्तेमाल ऐसा संकट है जिसे टाला जा सकता है, नहीं तो उससे जल प्रबंधन के तरीकों में असंतुलन पैदा हो सकता है। इसके अतिरिक्त, सुरक्षित पेय जल की उपलब्धता भी एक प्रासंगिक मुद्दा बन गया है क्योंकि प्रमुख जैविक और जीवाणुगत प्रदूषकों का उपचार नहीं किया जा रहा। अनेक शहरों में, बिना उपचार (शोधन) किए ही, नगर के कचरे/प्रवाहित मल को नदियों में छोड़ा जा रहा है। शहरी क्षेत्र इस तरह के प्रदूषण की चपेट में विशेष तौर पर होते हैं क्योंकि वहाँ मलमूत्र शोधन की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं होतीं। भूजल के स्तर में गिरावट होने से पूरे राष्ट्र में पानी की गंभीर कमी हो गई है। गरमी के मौसम में ऐसा विशेषकर से होता है जब भूजल के स्तर में गिरावट आ जाती है। अभी हाल ही में यह हुआ है कि जल संग्रहण के उपाय किए जा रहे हैं और कुछ शहरों में उसे अनिवार्य कर दिया गया है।

22.5.6 खराब स्वास्थ्य

स्वास्थ्य क्षेत्र में जो विकास हुए हैं, वे मूल रूप में शहरी क्षेत्रों तक सीमित हैं, यहीं नहीं, आमदनी का स्तर भी इसकी उपलब्धता को निर्धारित करता है। जीवन संभाविता के स्तरों में, निस्संदेह, बढ़ोतरी हुई है किन्तु शिशुओं में मृत्यु की ऊँची दर भी उल्लेखनीय है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की हाल ही की रिपोर्ट में भी अपनी जनसंख्या को स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने में भारत की असमर्थता के प्रति अप्रसन्नता व्यक्त की गई है। स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता का सीधा सम्बन्ध आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण से है; किसी व्यक्ति का बेहतर स्वास्थ्य उसे उत्पादन के नुकसान को कम करने के योग्य बनाता है और इस तरह उत्पादकता के उच्चतर स्तरों में उसका योगदान भी बढ़ता है। इसका सीधा असर संसाधनों पर पड़ता है और अनावश्यक खर्चे बच जाते हैं, जिन्हें बेहतर जीवन स्तर को सुनिश्चित करने की दिशा में लगाया जा सकता है। ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए ज़िम्मेदार "सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र" में अक्सर पूरे कर्मचारी नहीं होते, अथवा ऐसे कर्मचारी होते हैं जो ग्रामीण इलाकों में काम करने के इच्छुक नहीं होते। अक्सर वहाँ स्वास्थ्य सेवा अथवा चिकित्सा के लिए आवश्यक उपकरणों और बुनियादी सुविधाओं का अभाव होता है।

22.5.7 साक्षरता दर

विकास का एक बुनियादी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक शिक्षा है। यह वह साधन है जिसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समावेश की स्थिति बनती है और लोगों का स्थाई एकीकरण होता है, विशेषकर उन लोगों का जो किसी समाज की मुख्यधारा से "बहिष्कृत" हैं। यह सर्वोत्तम सामाजिक निवेश है, जिसका श्रेय लोगों में उनके कल्याण के प्रति उसकी सकारात्मकता को जाता है। महिलाओं की साक्षरता दर लगातार पीछे बनी हुई हैं और प्रगति को अक्सर लिंग, जाति, और आय समूह का और शहरी और ग्रामीण स्तर का ग्रहण लग जाता है। जहाँ महिला साक्षरता दर ऊँची हैं, वहाँ इसने प्रजनन, शिशु और बाल मृत्यु दरों को काफी कम कर दिया है। इसने ग्रामीण महिलाओं में यह आत्मविश्वास भी भरा है कि वे स्व-सहायता समूहों और महिला विकास समूहों की सदस्य बनकर अपनी आय में बढ़ोतरी करें।

22.5.8 पर्यावरणीय सतत्ता

पर्यावरण के स्तर को कूड़े, घरेलू ठोस कचरे, अस्पतालों और वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के कचरे के रूप में शहरी ठोस कचरे से भी खतरा होता है। शहरी क्षेत्रों में, ठोस कचरे के ढेर सड़कों के किनारों पर पड़े दिखाई देते हैं, जिनमें प्लास्टिक बैग भी शामिल हैं। लोग इन्हीं को कूड़ा डालने की जगह मानकर अपना कूड़ा-कचरा यहाँ फेंक जाते हैं। फफूंद, जीवाणु और विषाणु स्वास्थ्य के लिए भीषण खतरा पैदा करते हैं, और विशेषकर उन लोगों के लिए जो इन खुले कूड़ादानों के निकट रहते हैं। समय-समय पर इस कचरे को सीवरेज प्रणाली के माध्यम से निपटाया जाता है जिससे नाले-नालियाँ रूक जाती हैं और पानी का प्रवाह बाधित होता है। इसी से पानी दूषित होता है और सुरक्षित पेय जल में प्रदूषण हो जाता है। अपर्याप्त संग्रहण और उचित निपटान सुविधाओं का अभाव इस व्यापक खतरे के मुख्य कारण हैं।

22.6 राज्य की ज़िम्मेदारियाँ

राज्य की इस सम्बन्ध में भारी ज़िम्मेदारियाँ हैं कि वह एक बढ़िया जीवन स्तर उपलब्ध कराने के अतिरिक्त संसाधनों का संरक्षण भी सुनिश्चित करे। इसके लिए आवश्यक होता है कि राज्य और स्थानीय स्तर पर प्रभावी नीति बनाई जाए। सरकारी तंत्र के लिए आवश्यक है कि वह इस लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयास में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले। इसके लिए अनिवार्य तत्त्व निम्न प्रकार हैं:

22.6.1 राज्य स्तर तक नीतिगत ढाँचा

नीतिगत ढाँचे में केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्तरों पर होने वाली पहल शामिल होती है, जिसका लक्ष्य समाज के समक्ष उपर्युक्त चुनौतियों का मुकाबला करना होता है। हमारा सरोकार क्योंकि राज्य और स्थानीय स्तरों के प्रयासों की विवेचना करने से है, इसलिए हम इस स्तर पर लागू कुछ नीतियों को लेंगे। भारतीय नीतियाँ, विशेषकर अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आर्थिक नीतियाँ, सरकारी और निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने और उदारवादी/बाज़ारोन्मुख आर्थिक नीतियों को अपनाने पर केन्द्रित हैं। क्योंकि राष्ट्र को वैश्विक बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी, अर्थव्यवस्था के उदारीकृत पक्ष को संसाधनों का एक अभूतपूर्व प्रयोग देखने को मिला। इसके परिणामस्वरूप संसाधनों का जो ह्रास हुआ, उससे राज्य पर पर्यावरण अनुकूल नीतियाँ लागू करने का भारी बोझ आ पड़ा है। तब से, एक प्रमुख लक्ष्य के तौर पर "सतत् विकास" पर विचार करने हेतु स्थानीय स्तरों पर अनेक प्रयासों को अपनाया अथवा शुरु किया जा रहा है। बिना विनाश के विकास के लिए, सरकार ने अनेक कार्यक्रम शुरु किए, जैसे शहरी प्रदूषण का नियंत्रण, वनोन्मूलन के उपायों का न्यूनीकरण, संयुक्त वन प्रबंधन, पर्यावरण प्रबंधन व्यवस्था, भूजल स्तर में गिरावट के मुकाबले के लिए जल संग्रहण के उपाय, जैव-विविधता के संरक्षण के उपाय आदि। सरकार ने एक "राष्ट्रीय पर्यावरण नीति" भी शुरु की है, जिसकी गहन छानबीन राज्य के अनेक सम्बन्धित निकाय और संगठन कर रहे हैं। सरकार ने समाज कल्याण और आय सृजन योजनाओं के माध्यम से तकनीकी और स्वदेशी ज्ञान के संवर्धन, स्वदेशी प्रणालियों और उद्योगों के विकास और ग्राम विकास कार्यक्रमों को भी उचित महत्त्व दिया है।

22.6.2 जिला स्तरीय प्रयास और पंचायतों की भूमिका

विकेन्द्रीकृत शासन की परिभाषा में वे प्रयास शामिल हैं जो अच्छा शासन देने के लिए निम्न स्तरों पर किए जाते हैं। जिला स्तर पर भी सतत् विकास की नीतियाँ चलाने के प्रयास किए जा रहे हैं। जीवन का स्तर सुधारने के लिए विभिन्न सरकारों ने ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरु किए हैं जिनमें जिला स्तर पर समन्वय की ज़रूरत होती है। जिला स्तर का सरकारी तंत्र आम तौर पर विभिन्न क्षेत्रों की क्षमताओं के विकास में और स्थानीय उद्योगों के विकास में आय के अवसर पैदा करने में शामिल रहता है। विकास कार्यक्रम शुरु करने की ज़रूरत पिछड़े क्षेत्रों और उन क्षेत्रों में होती है जहाँ प्राकृतिक आपदाएँ

तबाही मचाती हैं। इसलिए, पंचायतों की भूमिका समूचे विकास के लिए और नीचे से शीर्ष स्तर तक विकास कार्य चलाने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

सतत् विकास का लक्ष्य सबसे अच्छी तरह से पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। उनके माध्यम से, विभिन्न विकास परियोजनाओं में स्थानीय लोगों की भागीदारी संभव होती है और वे अपने लिए अत्यंत लाभकारक पर्यावरण बनाने के सम्बन्ध में अपनी बात रख सकते हैं। पंचायती राज संस्थाओं का वजूद बहुत पुराना है, किन्तु एक लंबे समय तक उनके पास कोई अधिकार नहीं थे। संविधान संशोधन में प्रभावी विकास हेतु इन स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने पर जोर दिया गया। 73वें संविधान संशोधन में पंचायतों को संवैधानिक दर्जा, अधिक अधिकार और कार्य दिए गए हैं जिनमें वित्तीय मामले भी शामिल हैं। राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार शासन के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु इस पहल का स्पष्ट उद्देश्य बुनियादी स्तर पर एक सहभागी ढाँचे के भीतर ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक विकास की गति को तेज़ करना है। तब से, पंचायतें स्थानीय प्रशासन के मामलों में सक्रिय रूचि लेती आ रही हैं और इससे प्रभावी स्थानीय भागीदारी संभव हुई है। अधिकाधिक महिलाएँ अब इन स्थानीय निकायों के चुनाव लड़ रही हैं। जिन जगहों में महिलाओं को चुना गया है उनमें से अधिकांश में जिला, प्रखण्ड और ग्राम स्तर पर विकास की कार्यनीतियाँ लागू की जा रही हैं। पंचायत विकास योजनाओं के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र हैं – कृषि, सिंचाई, जल विभाजक प्रबंधन, ग्रामीण खेती, फार्म उत्पाद, डेरी, मुर्गी पालन, पशुपालन, मछली पालन, ग्राम विकास योजनाएँ, आवास, कुटीर उद्योग, ऊर्जा का उपयोग, समाज और परिवार कल्याण, परिवहन तथा संचार तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार, राहत और पुनर्वास, शिक्षण तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की सुविधाएँ और गरीबी हटाने के कार्यक्रम।

पंचायतों के प्रावधानों के अनुसार, ग्राम सभा को सभी सामाजिक क्षेत्रों की संस्थाओं और कर्मियों को नियंत्रित करने का अधिकार दिया गया है, जिसमें लघु वनोपज का स्वामित्व, विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत लाभार्थियों का चुनाव, लघु जलाशयों का प्रबंधन, और लघु खनिज पट्टे शामिल हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना के प्रस्ताव को यदि उचित तरीके से लागू किया जाए तो उससे स्थानीय स्तर पर बहुत लाभ मिल सकते हैं। विकेन्द्रीकृत शासन की सफलता इन कल्याण योजनाओं के सक्रिय कार्यान्वयन पर अधिक निर्भर करती है।

22.6.3 शहरी पर्यावरण का प्रबंधन

पूरे देश में शहरीकरण की बढ़ती रफ्तार से अब शहरी पर्यावरण के प्रबंधन के लिए बड़ी चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं। बहु-केन्द्रित बस्तियों, फैलते शॉपिंग मॉल, बढ़ती हुई जनसंख्या, संसाधनों की कमी, लचर शहरी अवसंरचना, अपर्याप्त आवास सुविधा, वायु, भू तथा जल प्रदूषण, ठोस कचरा संग्रहण की समस्या और सुरक्षित पेय जल की अनुपलब्धता ने शहरी आबादी की अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य और उत्पादकता के स्तरों को खटाई में डाल दिया है। सतर्क डिजाइन, आयोजन और प्रबंधन के अभाव ने पर्यावरण सम्बन्धी मौजूदा चुनौतियों को और भी बढ़ा दिया है। विकास प्रक्रिया में ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा का परिणाम आजीविका के वैकल्पिक स्रोत की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर सामूहिक पलायन के रूप में सामने आया है। इसने नौकरियों की कमी तथा असुरक्षा और अस्वास्थ्यकर जीवन स्थितियों को जन्म दिया है।

शहरी क्षेत्रों में जीवन को स्तरीय बनाए रखना तो विकेन्द्रीकृत शासन का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है। शहरी वातावरण की सुरक्षा के लिए नागरिक निकाय सीधे तौर पर ज़िम्मेदार है। नागरिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने की दिशा में प्रयासों को तेज़ करने के अतिरिक्त, इन संस्थाओं को आम जनता में जागरूकता फैलानी चाहिए और पर्यावरणीय लोकाचार को बढ़ावा देना चाहिए जिससे ऐसी गतिविधियों से बचा जा सके जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर पर्यावरण के ह्रास का कारण बनती हैं। स्थानीय लोगों के सरोकारों का ध्यान रखकर और बुनियादी सेवाएँ उपलब्ध कराकर प्रतिकूल प्रभावों को कम

किया जा सकता है। गिरते शहरी स्तर का एक प्रमुख कारण संसाधनों निकायों और सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं के बीच अच्छे समन्वय और प्रबंधन का अभाव है।

ज़िम्मेदार संस्थाओं के सुचारु ढंग से काम करने को सुगम बनाने हेतु यह आवश्यक है कि किसी कार्य को दोहराया न जाए और तंत्र एक-दूसरे का अतिक्रमण न करें। ज़वाबदेही का न होना और प्रशिक्षण तथा कुशल कामगारों का अभाव और समस्याएँ पैदा करता है। शहरी क्षेत्रों के सतत् संसाधनों की बहाली में नागरिक निकायों, ग़ैर-सरकारी संगठनों और शहरी प्रबंधन संस्थाओं के बीच प्रभावी तालमेल बहुत सहायक होगा।

22.6.4 स्थानीय समुदायों की भूमिका

विकास सम्बन्धी पहलों की सक्षमता, पारदर्शिता और सतत्ता को सुनिश्चित करने हेतु स्थानीय भागीदारी को प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि इससे केवल लोकतांत्रिक दृष्टिकोण ही नहीं बनता बल्कि परियोजनाओं का कार्यान्वयन भी सुनिश्चित होता है। विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भागीदारी प्रबंधन और तकनीकों को अपनाना होगा। यदि पृथ्वी के संसाधनों को अतिशय मानवीय हस्तक्षेप से बचाना है, तो ठोस और दंडात्मक उपाय करने होंगे। सतत् और आत्मनिर्भर समुदायों के निर्माण के लिए स्थानीय समुदायों, पंचायतों, सहकारी संगठनों और महिलाओं की सहभागिता अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण को इस प्रकार बढ़ावा देना चाहिए कि उसमें स्थानीय समुदायों की बात मुखर हो। उनकी संस्कृति और आजीविका आसपास के प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, इसलिए ज़रूरी हो जाता है कि उन्हें विकास योजना के प्रारंभिक चरण से संपन्नता के चरण तक विकास योजनाओं में शामिल किया जाए। इस दृष्टिकोण से, विकास की प्रक्रिया में भागीदारों और सहायकों के रूप में उनका स्थान सुनिश्चित होता है और उन्हें साझा लाभों को वर्गीकृत, नियोजित करने, बनाए रखने और उनकी हिस्सेदारी करने की सामर्थ्य और शक्ति मिलती है। विकास की प्रक्रिया अनिवार्यतः समाज का ही दर्शन है; इससे समस्याओं के समाधान हेतु ज्ञान और कौशल के उपयोग में मदद मिलती है। ग्रामीण उद्योग स्थानीय लोगों की आय का आधार हैं और विकास की कार्यनीतियों में प्रभावी भागीदारी प्रबंधन के साधनों को शामिल करना चाहिए और उत्पादकता तथा आय बढ़ानी चाहिए।

जहाँ युवाओं की क्षमता का उपयोग इस प्रक्रिया को तेज़ी प्रदान करने में किया जा सकता है, वहीं, महिलाओं की भूमिका पर भी जोर देना चाहिए। कार्यनीतियों में जब कोई बदलाव होता है तो सबसे अधिक प्रभावित महिलाएँ ही होती हैं, किन्तु जब विकास सम्बन्धी प्रस्ताव शुरु किए जाते हैं तो सबसे कम परामर्श उन्हीं से होता है। उन्हें छोड़ देने अथवा उनकी उपस्थिति की उपेक्षा करने से इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते। उनका सशक्तिकरण आसन्न है। जैसा कि राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया हैः "अनेक मामलों में, सरकारी मानकों के ह्रास और दूसरों द्वारा व्यक्तिगत शोषण को रोकने हेतु समताकारी शक्तियों की स्थापना के महत्त्वपूर्ण साधनों में महिलाओं, सीमांतों और बहिष्कृतों के सशक्तिकरण को दिखाया गया है। महिलाओं ने अपने परिवार और पर्यावरण के पोषण का काम किया है। भूमि अधिग्रहण, ईंधन, चारा, वनोपज तथा जल संग्रहण के माध्यम से संसाधनों की उपलब्धता और प्रबंधन का महिलाओं के लिए अत्यधिक महत्त्व है। भूमंडलीकरण और पितृसत्ता की मौजूदगी ने महिलाओं की भूमिका को काफी हद तक सीमित कर दिया है; बाद में सतत् संसाधनों पर उनका नियंत्रण नहीं रहा। उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और आमदनी के स्तरों में सुधार होने से पर्यावरण की अनिवार्य संरक्षिकाओं के रूप में उनकी स्थिति निश्चित होगी। इसके अतिरिक्त, उन्हें अपनी आमदनी का जरिया स्वयं बनाने के लिए वित्तीय सहायता देने से उन्हें मुख्यधारा में शामिल होने और प्रभावी योगदान करने योग्य बनाया जा सकेगा।

22.7 कार्यान्वयन की कार्यनीतियाँ

विकास की किसी भी प्रक्रिया में, नीति-निर्माण कभी कोई समस्या नहीं होती, समस्या होती है उसके कार्यान्वयन में। भारत में योजनाओं और नीतियों की कोई कमी नहीं हैं, असली चिंता उनके कार्यान्वयन की है, और यह चिंता अक्सर समाज के विभिन्न स्तरों द्वारा व्यक्त होती है। शासन के लिए सक्षम तंत्र/संस्थाओं की ज़रूरत होती है। ये वे संस्थाएँ हैं जिन पर प्रक्रमों, नियमों और कार्यक्रमों का सहायक ढाँचा और वितरण अथवा डिलीवरी तंत्र निर्भर करते हैं। ये संस्थाएँ घोषित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और उनके बीच तालमेल से उनकी प्रभाविता निर्धारित होती है। लोकप्रिय भाषा में इन्हें तीन एफ (F) कहा जाता है : कार्य (Functions), कर्मी (Functionaries) और वित्त (Finance)।

22.7.1 कार्य

कार्यान्वयन संस्थाओं के कार्य विविध होते हैं। उनके दायरे में शासन का – राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और नागरिक – व्यापक क्षेत्र आता है। यहाँ प्राथमिकता भोजन, आवास, जल, स्वास्थ्य और स्वच्छता के मौलिक अधिकारों के प्रावधान को सुनिश्चित करने की है। एक कार्यान्वयन संस्था को शक्ति संपन्न करने के बजाय, शासन के विकेन्द्रीकृत स्वरूप की दिशा में भी सतत् प्रयास होने चाहिए। इसमें राज्य, जिला और ग्राम स्तर पर शासन के सक्षम साधन शामिल हैं। स्थानीय स्तर पर इन राजनीतिक निकायों में आरक्षण के कार्यान्वयन पर निगरानी होनी चाहिए। समाज के कमजोर वर्गों और महिलाओं के लिए यह अनिवार्य कर देना चाहिए कि वे स्थानीय प्रशासन में भागीदारी करें अथवा निर्णय करने या किसी अधिशासी निकाय का प्रमुख बनने की ज़िम्मेदारी भी लें। बेहतर व्यावसायिक लोकाचार, सतत् मानव विकास, पर्यावरण संरक्षण और नागरिक ज़िम्मेदारियों की दिशा में भी लोगों का जुटाव होना चाहिए। अन्य कार्य हैं – कानून व्यवस्था बनाए रखना, कानून के राज और बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तियों के अधिकारों और प्रेस तथा संचार माध्यमों की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना, सामाजिक सूचकों में स्थिर सुधार सुनिश्चित करना; कर प्रणाली को लागू करना और करों को वसूल करने की प्रक्रिया को सरल बनाना; स्थानीय संसाधनों और लाभों का समान वितरण गरीबी उन्मूलन के उपाय करना; और उच्च्व सरकारी पदों के स्तर पर पारदर्शिता सुनिश्चित करना और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करना। "सूचना का अधिकार" अधिनियम पारित करके सरकार ने शासनिक मामलों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने की दिशा में एक बड़ी पहल की है।

22.7.2 कर्मी

विकेन्द्रीकृत शासन की सबसे पहली कर्मी स्वयं सरकार है। वही उसके निर्णयों, कार्यों और नीतियों के कार्यान्वयन के लिए ज़िम्मेदार होती है। इस संदर्भ में, जवाबदेही एक महत्त्वपूर्ण तत्व होता है। प्रशासनिक मामलों में निर्णय का अधिकार नौकरशाही को होता है और वही नागरिकों के प्रति ज़वाबदेह होती है। भारत में, अधिकांश निर्णय नौकरशाहों द्वारा किए जाते हैं जो प्रशासनिक तंत्र के केन्द्र में होते हैं। नौकरशाही अपने निरंकुश अधिकार, और आम जनता के सरोकारों की उपेक्षा के लिए बदनाम रही है। अंततः नागरिक प्रशासनिक व्यवस्था की भूमिका को विकेन्द्रीकृत शासन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक माना जाता है। ये माँगें भी उठी हैं कि कानून प्रवर्तक तंत्र और जिला तथा ग्राम स्तरों पर विकास की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए ज़िम्मेदार तंत्र के बीच एक स्पष्ट शक्ति विभाजन किया जाए। मसलन, जिला मजिस्ट्रेट प्रखण्ड स्तर पर लगभग 167 विकास योजनाओं की निगरानी करता है; इससे विकेन्द्रीकृत निकायों का दर्जा और समूची संस्थागत क्षमता भी गंभीर रूप में खतरें में पड़ जाती है (*राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट*, पृष्ठ 129)। इसका मतलब मानव विकास की पहलों में और काम की गुणवत्ता में समझौता भी होता है। जिला, प्रखण्ड और ग्राम स्तरों के अधिकारी काफी हद तक उन

कामों को करने के लिए ज़िम्मेदार हैं जो सार्वजनिक विकास-उन्मुख होते हैं। काम करने वाले अधिकारियों को पुरस्कार और प्रोत्साहन देने और काम न करने वालों के खिलाफ कार्यवाही करने से शासन में पारदर्शिता, सक्षमता और जवाबदेही सुनिश्चित होगी।

22.7.3 वित्त

शासन का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू होता है विकास परियोजनाओं के लिए पर्याप्त निधि का आबंटन। पर्याप्त निधियों और बजट को इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में लगाना चाहिए। बृहद् और लघु स्तरों पर अर्थव्यवस्था के प्रबंधन से संस्थागत क्षमता के लिए प्रभावी शासन प्रदान करना संभव होता है। उपलब्ध संसाधनों का उपयोग बुद्धिमानी से होना चाहिए और स्थानीय संसाधनों को उनका संपूरक होना चाहिए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रक्रम सम्बन्धी देरी और रुकावटों से निधियों के अंतःप्रवाह और सहायता में बाधा आती है और वे उन लाभार्थियों तक नहीं पहुँच पातीं जिनके लिए प्रदान की जाती हैं। भारतीय संदर्भ में यह अक्सर मौजूद होती हैं जहाँ समाज के कमजोर तबकों को उनका उचित हिस्सा नहीं मिल पाता। यह यहाँ के खराब, संसाधन-प्रबंधन और शासन का द्योतक है। सार्वजनिक निवेश में वित्तीय पहलू भी आता है। सड़कों और आवास योजनाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं को विकास से अनेक ग्रामीणों को आमदनी हो सकती है, इससे उन पर्यावरणीय संसाधनों पर कम बोझ पड़ेगा जिन्हें अंधाधुंध तरीके से निकाला जाता है। इससे गरीबी और अभाव से निपटने में भी मदद मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों के समूचे विकास के लिए निधियाँ आबंटित करने में योजना तथा वित्त आयोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पर्याप्त बजट आबंटन होने के बावजूद, अनेक निर्धियाँ व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण लक्षित लाभार्थियों तक नहीं पहुँच पातीं। पारदर्शिता बढ़ाना, सामाजिक लेखा परीक्षण और वित्तीय जवाबदेही और भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही कुछ ऐसे कदम हैं जिन्हें प्रभावी सतत् मानव विकास शासन की दिशा में उठाया जा सकता है।

22.8 सारांश

सहायक पारिस्थितिकीय तंत्र की वाहक क्षमता के अन्दर रहते हुए मानव जीवन की गुणवत्ता को सुधारने की प्रक्रिया ही सतत् विकास है। इसमें विकास की बात होती है जिसे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बग़ैर प्राप्त किया जा सकता है। संसाधनों का प्रबंधन कहने को तो आसान है किन्तु करने में कठिन है। इसमें केन्द्र ही नहीं राज्य स्तर पर भी सतत् विकास के लक्ष्य को शासन तथा विशेषकर विकेन्द्रीकृत शासन के साथ एकीकृत करने के तौर तरीकों को राष्ट्रीय नीति के साथ-साथ निर्धारित करने के लिए जारी प्रयासों की आवश्यकता होती है। भारत में यह एक चालू प्रक्रिया है। सतत् प्रशासन हेतु शासन में विकास की कार्यनीतियों के प्रति आर्थिक और पर्यावरणीय सरोकारों का एक एकीकृत दृष्टिकोण शामिल होना चाहिए, जिसमें केवल नागरिकों को दिए जाने वाले जीवन स्तर का ही नहीं बल्कि "सामाजिक साम्य" को लक्षित एक समान वितरण का भी ध्यान रखा जाए। शासन को चाहिए कि वह नागरिक के विकास के अधिकार की भी रक्षा करे, और साथ-ही-साथ पर्यावरण के सरोकारों को भी उच्च वरीयता प्रदान करे। भारत में सतत् विकास के समक्ष असंख्य चुनौतियाँ हैं, जैसे जैव-विविधता का विनाश, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास, भू-जल तथा वायु का प्रदूषण, खराब स्वास्थ्य, निम्न साक्षरता दर और पर्यावरणीय सततता का अभाव। विकेन्द्रीकृत शासन मानवीय और पर्यावरणीय सरोकारों को समान रूप से बढ़ावा देने में सहायक होता है। इसके लिए कार्य, कर्मी और वित्तीय तंत्रों के एकीकरण की गति को तेज़ करने की आवश्यकता है; तभी सतत् मानव विकास को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

22.9 मुख्य अवधारणाएँ

संवैधानिक नीति (Constituent Policy) : वह नीति जो सामान्यतः जनता के लाभ के लिए डिजाइन की जाती है अथवा जो सरकार के उद्देश्यों को पूरा करती है।

वितरण नीति (Distributive Policy) : वह नीति जो सामान्य कर निधियों का प्रयोग करने के लिए बनाई जाती है जो व्यक्तिगत अथवा समूहों की सहायता और उन्हें लाभ प्रदान करती है।

अलाभकारी संगठन (Non-profit Organisations) : संगठन जो फालतू करों का वितरण करने के लिए कानून द्वारा बनाए जाते हैं।

स्टेकहोल्डर्स (Stakeholders) : कई अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति जो नीति निर्णय में अन्तर्ग्रस्त होते हैं और परिणामों से प्रभावित होते हैं।

22.10 संदर्भ व अन्य लेख

राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट, 2001, भारत का योजना आयोग।

ए.के. शिव कुमार, "पावर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इन इंडियाः गेटिंग प्रायर्टीज राइट", वेबसाइट http://hdr.undp.org/docs/publications/vocational papers/oc30/htm.p.2 पर ऑन लाइन पढ़ें।

दास गुप्ता, मोनिका, चेन लिंकन सी. तथा कृष्णन, टी.एन., 1998, *हेल्थ, पावर्टी एण्ड डेवलपमेंट इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

ड्रेज़ जीन तथा सेन, अमर्त्य, 1995, *इंडिया : इकॉनामिक डेवलपमेंट एण्ड सोशल ऑपर्चूनिटी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

सेन, अमर्त्य, 2001, *डेवलपमेंट एज फ्रीडम*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।

तिलक, जनध्याल बी.जी., 1994, *एजुकेशन एण्ड डेवलपमेंट इन इंडिया*, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

ओस्वाल्डो. डि रिवेरो, 2001, *द मिथ ऑफ डेवलपमेंट*, जेड बुक्स, लंदन।

सैक्स, जेफ्री, 2005, *दि एण्ड ऑफ पावर्टी*: हऊ वी कैन मेक इट हैपन इन अवर लाइफटाइम, पेंग्विन बुक्स, लंदन।

ब्राउन, लेस्टर आर., 2002, *इको-इकॉनमी : बिल्डिंग एन इकॉनमी फॉर दी अर्थ*, ओरिण्एट लॉगमैन, हैदराबाद।

22.11 अभ्यास

1) सतत् विकास क्या है? सतत् विकास को सुनिश्चित करने में प्रभावी प्रशासन किस प्रकार सहायक हो सकता है?

2) "राज्य और स्थानीय स्तरों पर सरकारी कार्यनीतियों के एकीकरण का परिणाम अच्छे शासन और मानव विकास के रूप में सामने आया है।" इस कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।

इकाई 23 विकेन्द्रीकरण : संभावनाएँ

रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 पंचायती राज तथा नगर निकाय सुधारों का प्रभाव

23.3 भावी मुद्दे

23.4 जन आकांक्षाएँ

23.5 सारांश

23.6 मुख्य अवधारणाएँ

23.7 संदर्भ व अन्य लेख

23.8 अभ्यास

23.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- पंचायती राज तथा नगर निकायों (Municipal Bodies) पर सुधारों के प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे; और
- स्थानीय शासन के मुद्दों और उसके प्रति लोगों की आकांक्षाओं (Aspirations) की पहचान कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) लोक प्रशासन के साहित्य में एक प्रमुख मुद्दे के रूप में और इस शताब्दी के एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक आविष्कार के रूप में उभरा है। 1970 और 1980 के दशकों में यह एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत लक्ष्य रहा जब विकासशील देशों की सरकारों ने आर्थिक विकास के अधिक समतापूर्ण सामाजिक स्वरूपों को तैयार करने और गरीबों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में प्रयास शुरु किए। आधुनिक राज्य के कार्यों की विविधता, संख्या और जटिलता में अत्यधिक वृद्धि होने के परिणामस्वरूप, विकेन्द्रीकरण सरकारी सेवाओं के प्रशासनिक संगठन का एक प्रमुख तत्व बन गया है। हाल के वर्षों में, विकेन्द्रीकरण प्रबंधन के दर्शन का कामधेनु (golden calf) बन गया है और प्रबंधन के व्यवहारगत पहलुओं के साथ इसका और भी अच्छा मेल है। विकास सम्बन्धी कार्यनीतियों में ज़ोर अब सामाजिक दृष्टि से अधिक समतापूर्ण आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और विकासशील देशों के निर्धनतम समूहों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के लिए अनिवार्य समझी जाने वाली निर्णय करने की क्रिया में व्यापक भागीदारी (spread participation) को उस भागीदारी को सुनिश्चित करने का एक तरीका कहा गया है।

पिछले कुछ वर्षों में, विकासशील देशों में विकेन्द्रीकरण की कई परिभाषाएँ सामने आई हैं और विकास आयोजना (Development Planning) तथा प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के लिए अनेक कारण गिनाए गए

हैं। कार्यक्रमों के अधिक प्रभावी कार्यान्वयन के लिए विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढाँचों के महत्त्व को बहुत पहले पहचान लिया गया है और कई देश इस दिशा में कदम भी उठा चुके हैं। ज़िम्मेदारियों का विकेन्द्रीकरण पहली शर्त है, क्योंकि स्थानीय संस्थाओं से स्थापित हो जाने की उपेक्षा नहीं की जा सकती है और उनके पास करने को काम भी होते हैं और उन कामों को करने की समकक्ष शक्ति भी। आयोजना और प्रबंधन के कार्य के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता को विकासशील देशों द्वारा अधिकाधिक समझा जा रहा है। 1980 के दशक की भागीदारी की बढ़ती साम्य और पहुँच जैसी विकास सम्बन्धी चुनौतियों ने सरकार और प्रशासन की वित्तीय स्थानीय इकाइयों के महत्त्व पर फिर से ज़ोर दिया है। विकेन्द्रीकरण के मकसद को अब आगे बढ़ाया जा रहा है क्योंकि यह माना जाता है कि "नीति तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन का विकेन्द्रीकृत तरीका अधिक प्रभावी समन्वय और स्थिरता में, सरकारी गतिविधियों में अधिक संलिप्तता में, विकास की प्रक्रिया में लोगों की बढ़ती भागीदारी में, बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करने हेतु सार्वजनिक सेवाओं को अधिक सक्षम ढंग से उपलब्ध कराने में, और सरकारी अभिकरणों की बढ़ती जवाबदेही में सहायक होता है।" इस प्रकार, विकेन्द्रीकरण के विचार ने विकेन्द्रीकरण की विचारधारा का रूप ले लिया।

संयुक्त राष्ट्र की *लोक प्रशासन की एक पुस्तिका* (*A Handbook of Public Administration*), के अनुसार विकेन्द्रीकरण तो प्रशासन की एक योजना है, जिसके चलते उन क्षेत्रों – प्रान्तों, जिलों, कस्बों और गाँवों – में सर्वाधिक कार्य करने संभव होंगे जहाँ लोग रहते हैं।

सरकार को सक्षम और प्रभावी होने के लिए कार्यों के सर्वाधिक विकेन्द्रीकरण की ज़रूरत होती है। प्रशासनिक कारणों के अलावा, प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण विशेष रूप में विकासशील देशों में राष्ट्रीय कार्यक्रमों में लोगों की समझ, सहयोग और भागीदारी विकसित करने के साधन के तौर पर महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, "विकेन्द्रीकरण और प्रत्यायोजन (Delegation) तो किसी भी प्रकार के प्रशासन के लिए आवश्यक हैं किन्तु विकास प्रशासन में तो वे अनिवार्य हैं, विशेषकर तब जब ज़ोर ग्राम विकास पर हो।"

आज की दुनिया में, विकेन्द्रीकरण एक सुविदित और व्यापक तौर पर अनुप्रयुक्त अवधारणा है, और विकास को बढ़ावा देने की एक नीति के तौर पर विकेन्द्रीकरण की लोकप्रियता बढ़ रही है। वास्तव में, अत्यंत भिन्न वैचारिक पृष्ठभूमियों के सुधारक विकेन्द्रीकरण के विचार की ओर आकर्षित हुए हैं। दूसरी ओर, केन्द्रीकरण आधुनिक राज्य तंत्र की अधिकांश बुराइयों से जुड़ा है, जैसे विलम्ब (delay), लालफीताशाही (Rad-tape), सहजता की सीमाएँ (Constraints of Spontaneity) आदि (फर्निस, नॉर्मन, 1974, पृष्ठ 958-959)।

विकासशील देशों की सरकारों द्वारा प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के अनुसरण से, सिद्धान्त रूप में, कल्याणकारी प्रशासन के एक साधन के रूप में उसकी लोकप्रियता का पता चलता है (कोन्यर्स, डायना, 1983, पृष्ठ 91-110, रोंडिनेली, डी.ए., 1983, पृष्ठ 181-208, 1981, पृष्ठ 122-145)।

कई सरकारें राजधानी से निचले स्तर की इकाइयों को प्रशासित करने की कठिनाइयों को समझने लगी हैं और यह समझ प्रभावी प्रशासन को बढ़ावा देने के लिए अनिवार्य है; विशेषकर उन देशों में जहाँ संचार प्रणालियों का ठीक से विकास नहीं हुआ है और लोगों में सही एकजुटता भी नहीं है। वास्तव में, केन्द्रीकृत प्रशासन को अब अक्सर प्रगति में आने वाली रुकावट समझा जाता है और विकेन्द्रीकरण (वास्तविक अथवा काल्पनिक) को अक्सर सभी बुराइयों की अचूक दवा माना जाता है (हक, अहमद शफीगुल, 1986, पृष्ठ 79-95)।

ग्राम विकास की एक नीति के रूप में, विकेन्द्रीकरण तीसरी दुनिया के उन अनेक देशों में लोकप्रिय है जहाँ औपनिवेशिक शासन रहा है। इन राज्यों के औपनिवेशिक शासक वास्तविक प्रशासनिक सुधार लागू करने को अनिच्छुक थे जिससे उनकी शोषणकारी नीतियों (Exploitative policies) में बाधा होती।

किन्तु, धीरे-धीरे, ये राज्य स्वतंत्र हो गए और इनकी नई सरकारों ने, अधिकतर, स्थानीय शासन को पुनर्गठित करते समय विकेन्द्रीकरण की नीतियों को अपना लिया।

राजनीति में सेना की संलिप्तता (Involvement) तीसरी दुनिया के देशों में आम है और सेना द्वारा सत्ता हथियाए जाने की घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। इन देशों के सैनिक शासक अलोकतांत्रिक तरीके से सत्ता में आ जाते हैं और सत्ता में आने के बाद आम तौर पर राजनीतिक अवसंरचना पर उनका पूरा नियंत्रण नहीं होता। आम तौर पर वे, अनेक प्रकार की, कल्याणोन्मुख समझी जाने वाली नीतियाँ अपनाकर एक सहायक अवसंरचना की स्थापना का प्रयास करते हैं। इन नीतियों में, विकेन्द्रीकरण को काफी पसंद किया जाता है (मुहम्मद, याहिया अख्तर, 1990, पृष्ठ 27)।

23.2 पंचायती राज तथा नगर निकाय सुधारों का प्रभाव

संवैधानिक सुधार लागू होने (1992) के बाद के दशक के उपर्युक्त आग्रहों को ध्यान में रखें तो, उनके योगदान और प्रभाव को लेकर काफी बहस और अटकलबाजी हुई हैं। जम्मू और कश्मीर को छोड़ दें तो, सभी प्रमुख राज्य पंचायत चुनावों का कम से कम एक दौर तो संपन्न करवा चुके हैं, और अनेक राज्यों में तो ये चुनाव दो बार हो गए हैं। लगभग तीस लाख लोग स्थानीय शासन के तीनों स्तरों पर स्थानीय परिषदों में चुने जा चुके हैं, जिनमें दस लाख महिलाएँ और बड़ी संख्या में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोग शामिल हैं। स्थानीय परिषदों में, विशेषकर सीटों के आरक्षण के चलते, बड़ी संख्या में गरीब लोगों की मौजूदगी ही अधिकांश ग्रामीण भारत के स्थानीय राजनीतिक परिदृश्य की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है, जहाँ पहले उन्हें सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक भागीदारी से अलग रखा जाता था। यह अत्यंत विवाद का विषय है कि बड़ी संख्या में उनकी इस मौजूदगी को स्थानीय सत्ता-सम्बन्धों के प्रभावी रूपांतरण और प्रतिनिधित्व में कितना परिणत किया गया है, और यहाँ हम मुख्य रूप में इसी पर विचार करने जा रहे हैं।

विभिन्न राज्यों में अनुपालन (Performance Across States)

पंचायती राज और नगर निकाय सुधारों के जानकार अधिकांश टिप्पणीकार यही कहेंगे कि इनके प्रभाव का निर्धारण करते समय सभी राज्यों को एक समान समझना कठिन है। जब निर्वाचित सरकार के निचले स्तरों को धन और अधिकार देने के लिए संवैधानिक सुधार के प्रावधानों को लागू करने की बात होती है तो छः राज्यों के एक छोटे समूह को अक्सर अधिक प्रगतिशील बताया जाता है। इनमें वे राज्य शामिल हैं जिन्होंने 1950 के दशक से ही स्थानीय निकायों को क्रियाशील रखा है, जिनमें महाराष्ट्र और गुजरात सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं, और वे दूसरे राज्य भी जिन्होंने पंचायतों को मज़बूत करने की दिशा में निरंतर प्रगति की है, जैसे केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और पश्चिम बंगाल। दूसरी ओर वे राज्य हैं जहाँ इस दौरान नाममात्र की प्रगति हुई है, और जिसके परिणामस्वरूप वहाँ की पंचायती राज संस्थाएँ ठीक से काम नहीं कर रही हैं, और उनके पास संसाधनों की भी कमी है। इन राज्यों में बिहार और जम्मू-कश्मीर आते हैं जिन्होंने कई वर्षों तक पंचायतों के चुनावों को टाले रखा, और उड़ीसा और उत्तर प्रदेश भी, जहाँ राजनीतिक स्वार्थ परायणता और अस्थिरता ने दिखावटी नीति प्रतिबद्धता की कुछ मात्रा के बावजूद स्थानीय निकायों को नुकसान पहुँचाया है।

यह स्पष्ट है कि पंचायती राज सुधारों की अग्रिम पंक्ति में समझे जाने वाले राज्यों का जमाव देश के पश्चिम और दक्षिण में है और अपेक्षाकृत ये आर्थिक दृष्टि से अधिक समृद्ध, सामाजिक दृष्टि से अधिक जुड़े और सक्रिय नागरिक समाज वाले हैं। इनकी तुलना में, सर्वाधिक गरीबी और असमानता और शासन की गंभीर समस्याओं से ग्रस्त उत्तरी राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थिति आम तौर पर कमज़ोर है। राजनीतिक संकल्प और सहायक विधान और नौकरशाही के खुलेपन के माध्यम से व्यक्त सुधार प्रक्रिया को मज़बूत करने की प्रतिबद्धता तो प्रगति की एक अनिवार्य शर्त है, और यह छः अग्रणी

राज्यों में भिन्न-भिन्न मात्राओं में पाई जाती है। संस्थागत सुधारों की सफलता की सामर्थ्य के लिए ढाँचागत स्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण निर्धारक होती हैं, और यह स्पष्ट है कि कम मुखर वर्गीय तथा जातिगत ध्रुवीकरण और असमानता के निम्न स्तरों से पंचायती राज संस्थाओं को प्रभावी ढंग से कार्य करने हेतु और भी अनुकूल स्थितियाँ मिलती हैं (रॉबिनसन, मार्क, 2005)।

संवैधानिक संशोधनों के प्रभावी होने के बाद सर्वाधिक दूरगामी सुधारों को लागू करने वाले दो राज्यों – केरल और मध्य प्रदेश – पर उन राजनीतिक दलों का नियंत्रण था जिनका नेतृत्व पंचायतों के सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध था। केरल में, जन आयोजना अभियान को लोगों की उच्च स्तर की एकजुटता पर आधारित किया गया था, जो उच्च स्तर की साक्षरता ओर पेशेवर समर्थन, और जनाधार वाले एक सामाजिक आंदोलन द्वारा संभव हुआ था। केरल में, नागरिक समाज के माध्यम से हुई लामबंदी के साथ राज्य द्वारा की गई कार्यवाही ने मिलकर उस प्रयोग को सफल बनाया (इशाक, 2000)। मध्य प्रदेश में, भूतपूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने आयोजना और प्राथमिकता निर्धारण में ग्राम सभाओं की भूमिका और जिला स्तरीय शासनों की मज़बूती हेतु अनेक सुधार शुरु किए थे (बेहर और कुमार, 2002)।

साथ ही, पंचायतों की मज़बूती हेतु तैयार किए गए दूरगामी सुधारों के कार्यान्वयन की सफलता उनकी सतत्ता की गारंटी नहीं देती, क्योंकि दोनों ही प्रयोग राज्यगत राजनीति की अनिश्चितताओं के आगे कमज़ोर साबित हुए हैं। पंचायती राज के प्रति राजनीतिक प्रतिबद्धता में यह आश्वस्त करने वाली बात दिखाई नहीं दी है कि इसके चुनावी लाभ भी मिल सकते हैं, जिससे अन्य राज्यों में इसका आकर्षण कमज़ोर हो सकता है। पश्चिम बंगाल की भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (Community Party of India [Marxist]; CPM) की सरकार ने पंचायती राज का इस्तेमाल अपने भूमि सुधार कार्यसूची को लागू करने और गाँवों में अपने राजनीतिक आधार की मज़बूती के लिए किया, और इसमें उसे काफी सफलता भी प्राप्त हुई (वेबस्टर, 1992)। केरल में जन आयोजना अभियान की लोकप्रिय अपील के बावजूद, पार्टी अपनी कार्यनीति को दोहरा नहीं पाई और 2001 के राज्य चुनावों में हार गई। मध्य प्रदेश में, कांग्रेस को 2003 के राज्य चुनावों में भारतीय जनता पार्टी से कड़ी चुनौती मिली, जिसमें इस बात की कोई निश्चितता नहीं थी कि सुधारों के उसके रिकार्ड के आधार पर निर्वाचक समूह को अपील करने से उसे सकारात्मक परिणाम मिलेंगे।

गहराता लोकतंत्र?

आमतौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि राजनीतिक विकेन्द्रीकरण इस अर्थ में काफी सफल रहा है कि सभी राज्यों में संवैधानिक संशोधनों के प्रावधानों को लागू किया गया है और स्थानीय शासन के तीनों स्तरों पर चुनावों का कम से कम एक दौर तो सम्पन्न किया ही गया है, भले ही कुछ राज्य सरकारों ने इसमें देरी की हो। निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाने से स्थानीय स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, और वे भी विशेषकर महिलाओं और सीमांतकृत अथवा हाशिये पर स्थित समूहों के लिए। राजनीतिक भागीदारी की दरें भी बढ़ गई हैं, जो सक्रिय अभियान (आम तौर पर, ग्राम पंचायतों के लिए ग़ैर-दलीय आधार पर), अधिक संख्या में मतदाताओं की सक्रियता और स्थानीय अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधिक संपर्क के रूप में दिखाई देती है और इससे स्थानीय लोकतंत्र को शक्तिशाली बनाने में मदद मिली है।

बहरहाल, ग्राम सभाएँ अधिकांश राज्यों में आज भी ठीक ढंग से काम नहीं कर रही हैं, क्योंकि उनके पास सीमित शक्तियाँ हैं और उनकी बैठकें भी कभी-कभार ही होती हैं, और वह भी स्थानीय नौकरशाहों के उकसाने पर आवास तथा रोज़गार सृजन कार्यक्रमों के लिए लाभार्थियों के नामों की पुष्टि हेतु। ग्राम सभा की बैठकों में उपस्थिति आम तौर पर बहुत कम होती है, क्योंकि ठोस मुद्दों पर बहुत कम चर्चा होती है, और इसका परिणाम यह होता है कि ये स्थानीय नीतिगत विकल्पों और कार्यक्रम सम्बन्धी

प्राथमिकताओं के विचारविमर्श हेतु एक कारगर मंच प्रदान नहीं करती हैं। इन कारणों से, लोगों की देखभाल कमज़ोर होती है और निर्वाचित प्रतिनिधियों की जवाबदेही का आश्वासन नहीं दिया जा सकता।

महिलाओं और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों का संवैधानिक प्रावधान, पंचायती राज सुधार के मौजूदा दौर को पहले किए गए उपायों से अलग करता है। दृढ़ कार्यवाही के अभाव में, पहले के विकेन्द्रीकृत प्रयासों में कुलीनों के प्रभाव का बोलबाला रहा, क्योंकि पंचायती मामलों में स्थानीय निहित स्वार्थों की अहम् भूमिका होती थी जो उनके श्रेष्ठतर सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक रुतबे की द्योतक थी। नई संवैधानिक व्यवस्था में, महिलाओं और अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों को सीटों में दिए गए आरक्षण के चलते उन्हें औपचारिक प्रतिनिधित्व के अवसर मिले हैं जो जनसंख्या में उनकी हिस्सेदारी के अधिक निकट हैं, किन्तु इन प्रावधानों की प्रभावशीलता अत्यंत विषम है। एक ओर तो, सीट आरक्षण के चलते इन वंचित समूहों को सार्वजनिक जीवन में अधिक दिखाई देने और स्थानीय मामलों को प्रभावित करने का मौका मिला है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ महिलाओं ने वित्तीय संसाधनों का इस्तेमाल करके और ऊँचे स्तर पर नौकरशाहों और नेताओं की मदद लेकर स्थानीय विकास के औसत लाभ निकालने में सफलता पाई है। दूसरी ओर, अधिकांश पंचायतों में कुलीनों का वर्चस्व बना हुआ है और इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक जाति नेता और भूमि संपन्न कुलीन किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से अथवा तिकड़म के द्वारा निर्णय करने की प्रक्रिया पर हावी रहते हैं। प्रभावशाली पुरुष सम्बन्धी निर्णय निर्माण को प्रभावित करते हैं और संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। जो महिला अथवा अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि दो टूक बात करते हैं, उन्हें समुदाय से बाहर कर दिया जाता है, अथवा वर्चस्वशाली लोगों का असहयोग झेलना पड़ता है (रॉबिनसन, मार्क, 2005)।

पश्चिम बंगाल और केरल के साक्ष्य बताते हैं कि महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानीय निकायों में भागीदारी की दरें बढ़ी हैं, किन्तु स्थानीय व्यय सम्बन्धी प्राथमिकताओं, सेवा-वितरण परिणामों, अथवा गरीबी की दरों पर इनका कोई स्पष्ट अथवा दिखाई देने वाला प्रभाव नहीं हुआ है। पश्चिम बंगाल में, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप गरीबों को महत्त्वपूर्ण लाभ मिले हैं, और ऐसा विशेषकर तब हुआ है, जब इनके साथ भूमि सुधारों और लोगों की एकजुटता को जोड़ा गया है। निर्वाचित पंचायतों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में लोगों की देखभाल के परिणामस्वरूप गरीबों को लाभ देने के लक्ष्य को और भी प्रभावी ढंग से पूरा किया जा सका है, हालाँकि इस बारे में संदेह व्यक्त किया गया है कि महिलाओं और भूमिहीनों को किस हद तक प्रत्यक्ष लाभ मिला है (वेब्सटर, 1902, क्रुक और स्वेरिसन, 2001)। केरल में, जन आयोजना अभियान (People's Planning Campaign) के माध्यम से लोगों की एकजुटता अथवा लामबंदी की प्रक्रिया ने पंचायतों में निर्णय करने की क्रिया में अनुसूचित जातियों और महिलाओं की सक्रियता को सुनिश्चित किया है, जिसके परिणामस्वरूप इन समूहों की ओर लाभों का प्रवाह हुआ है (इशाक, 2000)।

दूसरे राज्यों में, सीट आरक्षणों के चलते पंचायत निकायों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए औपचारिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है, किन्तु तुलनात्मक आँकड़ों के अभाव में, सकारात्मक कार्यवाही के कुल प्रभाव को देख पाना मुश्किल है (बुच, 2000)। सर्वोत्तम उपलब्ध साक्ष्य महिलाओं की भागीदारी से सम्बन्धित है, किन्तु अधिकतर यह राज्यों और बस्तियों के अप्रतिनिधि और लघु चयन से है। कर्नाटक के अध्ययन बताते हैं कि महिलाओं ने आरक्षित सीटों का इस्तेमाल स्थानीय विकास की प्राथमिकताओं का आकार देने के लिए करके ग्राम पंचायतों में थोड़ी प्रगति की है। छिटपुट साक्ष्य से पता चलता है कि महिला पंचायत नेताओं ने व्यक्तिगत स्तर पर सरकारी संसाधन प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। ये संसाधन उन्होंने स्वच्छता तथा स्ट्रीट लाइट के लिए (क्योंकि महिलाएँ, स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्राथमिकता देती हैं), गाँव की सड़कों और स्कूलों तथा शिशु

संभाल केन्द्रों जैसे सामुदायिक भवनों के रूप में अवसंरचना हेतु प्राप्त किए हैं, और यह सुनिश्चित किया है कि स्कूल अध्यापक जैसे सरकारी सेवक अपनी निर्धारित ज़िम्मेदारियों को पूरा करें। ये मामूली किन्तु महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ यह बताती हैं कि महिलाओं में समुदाय के लाभ के लिए निर्वाचित पद का उपयोग करने की और निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में अपनी वैधता को मज़बूत करने का सामर्थ्य है (स्टीफन और शेखरन, 2001)।

साथ ही, अपने पद सम्बन्धी दायित्वों को ज़िम्मेदारी से वहन करते समय, निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को अक्सर प्रासंगिक पुरुषों और स्वार्थी तत्वों के घोर विरोध का सामना करना पड़ता है, क्योंकि पुरुष प्रासंगिक तो उनकी सार्वजनिक भूमिका से नाराज़ होते हैं और स्वार्थी तत्त्व सकारात्मक कार्यवाही के विरोधी होते हैं। कर्नाटक के साक्ष्य से पता चलता है कि पुरुष किस तरह अक्सर उन प्रासंगिक महिलाओं के जरिये पंचायत के मामलों को प्रभावित करते रहते हैं जिनका चुनाव पंचायत के किसी पद पर हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ स्थानीय पदों पर चुनी गई महिलाओं को दुर्व्यवहार और हिंसा का सामना करना पड़ा है, और कहीं-कहीं तो उनकी हत्या भी कर दी गई। इससे भी आम प्रवृत्ति प्रभावशाली पुरुषों की यह है कि वे निर्वाचित पंचायत सदस्यों पर इस बात के लिए दबाव डालते हैं कि वे ग्राम पंचायत की महिला प्रमुखों को पद से हटाने के लिए अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन करें। अनुसूचित जाति और जनजाति की महिलाओं के लिए तो इसका और भी भयंकर असर होता है, क्योंकि उनके महिला और निम्न होने के नाते उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है और उनसे असहयोग किया जाता है। धौंसपट्टी के चलते और प्रभावी विकास कार्य के लिए प्रोत्साहन और संसाधनों के अभाव के कारण, अनेक महिलाएँ हतोत्साहित होकर, विशेषकर अनारक्षित सीटों पर, निर्वाचित पद के लिए खड़ी ही नहीं होती (विजयलक्ष्मी और चन्द्रशेखर, 2000; विजयलक्ष्मी, 2002)।

विस्तृत अनुसंधान के अभाव में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर पंचायती राज सुधारों के प्रभावों का सही-सही पता लगाना अधिक कठिन है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पुरुषों और महिलाओं को आबादी में उनकी संख्या के अनुपात में सीट आरक्षण मिलने से उनके प्रतिनिधित्व के स्तर और नेतृत्व में हिस्सेदारी की सुनिश्चितता हो गई है। इन समुदायों के कुछ निर्वाचित प्रमुख अपने नव प्राप्त अधिकार का प्रयोग करके, अधिक संसाधन प्राप्त करने और गाँव के मामलों में जातिगत भेदभाव को चुनौती देने में कामयाब रहे हैं। किन्तु, ऊँची जाति के व्यक्ति और परंपरागत नेता नेतृत्व के परंपरागत स्वरूप में इस घुसपैठ से नाराज होते हैं और उन्होंने आरक्षित सीटों में निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों के अधिकारों को बिल्कुल समाप्त करने के लिए अक्सर धमकियों और सहयोजन (Co-option) का सहारा लिया है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के निर्वाचित सदस्यों को पंचायतों में सामाजिक न्याय समितियों जैसे छोटे-मोटे काम ही दिए जाते हैं जिनकी अध्यक्षता कानूनी तौर पर अनुसूचित जातियों का कोई प्रतिनिधि ही कर सकता है। हालाँकि सामाजिक न्याय समितियों का यह काम होता है कि वे पंचायत के खर्च सम्बन्धी सभी निर्णयों की पुष्टि करें, फिर भी उनका इस्तेमाल ऊँची जातियों द्वारा लिए गए निर्णयों में रबर की मोहर के तौर पर किया जाता है। कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं जिनमें अनुसूचित जाति के नेताओं ने इन समितियों का सफलतापूर्वक प्रभावी इस्तेमाल करके प्रबल जातियों के अधिकार को चुनौती दी है अथवा अनुचित निर्णयों को रोका है।

उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि पंचायतों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पुरुषों और महिलाओं की संख्या बढ़ जाने के बावजूद गरीबों के हित में विकास के परिणाम, कम से कम एक बड़े स्तर पर तो, सामने नहीं आए हैं। इससे यह पता चलता है कि पंचायत के पास संसाधनों की कितनी कमी है और स्थानीय खर्च की प्राथमिकताएँ निर्धारित करने के सम्बन्ध में उनके पास कितने सीमित अधिकार हैं। यही नहीं, समाज कल्याण के कार्यक्रमों के लिए अनुदान प्राप्त आवास और रोज़गार सृजन के रूप में उपलब्ध संसाधन बहुत कम होते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि औसत

ग्राम पंचायत में प्रति वर्ष मात्र कुछेक व्यक्तियों को ही ये लाभ मिल पाते हैं। वित्तीय संसाधनों का और अधिक हस्तांतरण हुए बग़ैर, विकेन्द्रीकरण का प्रभाव सीमित ही रहेगा; इसलिए इन बाधक स्थितियों में गरीबी के स्तरों पर किसी उल्लेखनीय स्थानीय प्रभाव की संभावना अत्यंत कम ही है। इसी प्रकार, स्वास्थ्य और शिक्षा केन्द्रीकृत प्रावधान के अंतर्गत होने के कारण, निर्वाचित प्रतिनिधियों का स्थानीय स्तर के सेवा-वितरण पर कोई प्रभाव नहीं होता।

वित्तीय हस्तांतरण (Financial Devolution)

वित्तीय विकेन्द्रीकरण ने बहुत सीमित प्रगति की है क्योंकि संसाधन प्रवाह का निर्धारण राज्य तथा केन्द्र सरकार की गरीबी उन्मूलन योजनाओं के कार्यान्वयन सम्बन्धी दिशा-निर्देशों से होता है। स्थानीय राजस्व के जुटाव की गुंजाइश बहुत सीमित होती है, इसलिए सरकार के उच्चतर स्तरों से होने वाले वित्त प्रवाह पर अत्यंत निर्भरता हो जाती है। निर्वाचित प्रतिनिधियों का, विशेषकर ग्राम पंचायतों में, स्थानीय व्यय की प्राथमिकताओं पर बहुत कम प्रभाव होता है। व्यवहार में, पंचायत के वित्त पर नियंत्रण रखने वाले राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों से सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा, आम तौर पर संसाधनों की कमी के आधार पर, उपेक्षा कर दी जाती है। भारत में अनेक राज्य सरकारें वित्तीय घाटे का सामना कर रही हैं और स्थानीय शासनों को खर्च के मामले में और स्वायत्तता देने को इच्छुक नहीं हैं। पूँजीगत व्यय के लिए बजट बहुत सीमित होता है क्योंकि वेतन के आवर्ती खर्च में संसाधनों का एक बहुत बड़ा हिस्सा चला जाता है और नौकरशाही सुधार को तैयार नहीं है।

अकेले राजनीतिक प्रतिबद्धता से अच्छे ढंग से काम करने वाली पंचायती राज संस्थाओं और शहरी निकायों को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता; उसके लिए पर्याप्त शक्तियों का, ज़िम्मेदारियों और संसाधनों का, शासन के निचले स्तरों की हस्तांतरण करना होगा। विभिन्न राज्यों में वित्तीय हस्तांतरण के मामले में अत्यंत असमान प्रगति हुई है। अधिकतर, विकासगत संसाधन राज्य तथा केन्द्र सरकारों द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों से संबद्ध होते हैं, और व्यय तथा उपयोग के प्राचलों पर निर्भर होते हैं। इन कार्यक्रमों में पंचायतों की भूमिका आम तौर पर अनुदान प्राप्त योजनाओं (इंदिरा आवास योजना) और रोज़गार सृजन (संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना) के लिए लाभार्थियों की पहचान तक सीमित होती है, और इसकी पुष्टि भी ग्राम सभा करती है। असंबद्ध निधि की अल्प मात्रा स्थानीय विकास के उद्देश्य से उपलब्ध कराई जाती है, और यह मुख्यतः सामुदायिक भवनों और ग्रामीण सड़कों जैसी लघु-स्तरीय अवसंरचना के रूप में होती है। ग्राम पंचायतों को स्थानीय सम्पत्ति करों के माध्यम से थोड़े बहुत संसाधन जुटाने का अधिकार होता है, किन्तु इनका संग्रह करना कठिन होता है और उनकी निधियों का बहुत थोड़ा हिस्सा ही इस स्रोत से प्राप्त किया जाता है।

केवल दो राज्यों, केरल और पश्चिम बंगाल, ने पंचायती निकायों को अच्छे-खासे पैमाने पर संसाधन दिए हैं, और इन दोनों ही राज्यों में वामपंथी राजनीतिक गठबंधनों का शासन है। पश्चिम बंगाल देश का ऐसा राज्य है जिसने पच्चीस वर्षों की अवधि में पंचायतों को अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ देने का सबसे सतत् प्रयास किया है। इसके साथ बटाईदारों को काश्तकारी की सुरक्षा ओर स्वामित्व का अधिकार देने का महत्त्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम भी चला है और इसने इस प्रयास को बल दिया है। केरल में, विकेन्द्रीकृत आयोजना हेतु जन अभियान के अंतर्गत, वित्तीय हस्तांतरण की मात्रा कहीं अधिक और तेज थी, जिसमें राज्य के लगभग 40 प्रतिशत विकास संसाधनों का हस्तांतरण पंचायतों को 1996-97 – 2000-01 की अवधि में किया गया। दोनों ही राज्यों में, वित्तीय हस्तांतरण के माध्यम से स्थानीय निकायों को काफी असंबद्ध निधियाँ प्राप्त हुईं और निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ीं। बहरहाल, वित्तीय हस्तांतरण के साथ राजस्व उगाही की बड़ी ज़िम्मेदारी नहीं आई, जिसके चलते पंचायतें और नगरपालिकाएँ केन्द्र तथा राज्य सरकारों के हस्तांतरण पर ही अधिक निर्भर रहती हैं (रॉबिनसन, मार्क, 2005)।

खर्च की प्राथमिकताओं, और कुछ हद तक राजस्व उगाही के अधिकारों, पर निर्णय करने की प्रक्रिया का प्रभावी हस्तांतरण विकेन्द्रीकरण की सफल पहलों का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि इससे निर्वाचित प्रतिनिधियों को एक जायज भूमिका मिलती है। हस्तांतरित बजट के भीतर खर्च की प्राथमिकता के निर्धारण और संसाधनों की उगाही की ज़िम्मेदारी के बग़ैर राजनीतिक प्रतिनिधित्व तो विकेन्द्रीकरण का एक अत्यंत सीमित रूप है जो स्थानीय स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की वैधता और प्रतिबद्धता को नष्ट कर सकता है। इस प्रकार, वित्तीय हस्तांतरण का सीधा प्रभाव पंचायती राज संस्थाओं के लोकतांत्रिक चरित्र और विकास सम्बन्धी क्षमता पर पड़ता है। वैसे, पंचायतों में संसाधनों की उपलब्धता बढ़ जाने से यह सुनिश्चित नहीं हो जाता कि खर्च की प्राथमिकताओं से विकास होगा और गरीबी घटेगी क्योंकि ये परिणाम तो पंचायती निकायों के प्रतिनिधियों के कार्य, राजनीतिक भागीदारी की सीमा और गहनता, और स्थानीय निहित स्वार्थों की प्रभाव डालने की क्षमता, और विकास के परिणामों को निर्धारित करने वाले व्यापक संरचनागत कारकों पर निर्भर होते हैं।

प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण

वित्तीय अधिकारों के हस्तांतरण की सीमाओं का निकट सम्बन्ध प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के अनुपालन से है, जो स्वयं अत्यंत सीमित रहा है। स्थानीय शासन के निचले स्तर को ज़िम्मेदारियों के हस्तांतरण का, और ग्राम पंचायतों को विकास कार्यों के हस्तांतरण को नियंत्रित करने वाले विधान का, औपचारिक प्रावधान होने के बावजूद, प्रगति असमान रही है। व्यवहार में, बहुत ही कम राज्यों ने स्थानीय शासनों को निर्णय करने की पर्याप्त ज़िम्मेदारियाँ प्रदान की हैं, जो वास्तविक वित्तीय हस्तांतरण के अभाव के रूप में दिखाई देती हैं। स्थानीय अधिकारियों की भूमिका अधिकतर विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वियन तक सीमित है। स्वास्थ्य और शिक्षा कार्यक्रम राज्य स्तर पर लाइन मंत्रालयों द्वारा तैयार किए जाते हैं, जिसमें कार्यान्वयन की ज़िम्मेदारी स्थानीय शासनिक क्षेत्रों के नौकरशाहों को दी जाती है। निर्वाचित प्रतिनिधियों का स्थानीय विकास की प्राथमिकताओं पर बहुत कम प्रभाव होता है और लाइन विभाग के अधिकारियों पर उनकी सीमित निगरानी होती है।

अधिकांश राज्य कर्मचारियों का स्थानांतरण राज्य से शासन के निचले स्तरों को करने में असमर्थ रहे हैं। वरिष्ठ नौकरशाह इस आधार पर स्थानांतरण का विरोध करते हैं कि प्रमुख शहरी केन्द्रों से बाहर शिक्षा के अवसर अधिक सीमित हैं और भविष्य में उनकी प्रोन्नति भी प्रभावित हो सकती है। सार्वजनिक क्षेत्र के मज़दूर संघ कर्मचारियों के स्थानांतरण, अथवा राज्य के प्रशासनिक तंत्रों का आकार कम करने के प्रयासों का विरोध करते हैं। भारत के किसी भी राज्य ने कर्मचारियों को स्थानीय शासनों में स्थानांतरित करने अथवा स्थानीय अधिकारियों पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की निगरानी सुनिश्चित करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नहीं की है। स्थानीय शासनों के नौकरशाह, विशेषकर ग्राम पंचायतों के सचिव, निर्वाचित प्रतिनिधियों पर काफी प्रभाव बनाए रहते हैं, क्योंकि उन्हें सरकारी आदेशों में निहित वह जानकारी आसानी से उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि उनके पास सरकारी प्रक्रमों की समझ अथवा बुनियादी शिक्षा का अभाव होता है।

इस संक्षिप्त समीक्षा से हम प्रारंभ में उठाए गए प्रश्न की ओर लौटते हैं : एक दशक के सुधार के बाद, पंचायती राज और शहरी निकायों का पक्का चिट्ठा क्या है? 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के लागू होने के बाद के दशक में, पंचायती राज और नगर सुधारों के कार्यान्वियन की प्रगति छिटपुट और असमान रही है। किसी भी राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की उपलब्धियाँ न तो वित्तीय और न ही प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के अनुरूप रही हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ अत्यंत सीमित ही बनी हुई हैं। गाँव के दबंग अपने परोक्ष प्रतिनिधियों के माध्यम से खूब असर डालते हैं।

गहराते लोकतंत्र के मानदंड के आधार पर, इस बारे में कोई संदेह नहीं कि 1990 के दशक के प्रारंभ में स्थानीय शासन में हुए सुधारों ने राजनीतिक नियुक्तियों को विस्तृत कर दिया है, जबकि सकारात्मक कार्यवाही ने स्थानीय संस्थाओं में भागीदारी को व्यापक कर दिया है वहीं निर्वाचित अधिकारियों के अधिकारों और ज़िम्मेदारियों पर स्थायी दबाव अभी बने हुए हैं। सुधारों के विकासगत प्रभाव का साधारणीकरण करना तो और भी कठिन है, क्योंकि पंचायतों के अधिकार अलग-अलग राज्यों में काफी अलग-अलग हैं। छिटपुट साक्ष्यों से पता चलता है कि स्थानीय निकायों द्वारा अधिक भागीदारी और निगरानी के परिणामस्वरूप, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम निर्धनतम तबके को अधिक प्रभावी ढंग से लक्षित कर पाते हैं, जिसमें अनुसूचित जातियों और महिलाओं का अब वैधानिक प्रतिनिधित्व है। किन्तु यह भी स्पष्ट होता है कि पंचायतों को अभी भी कुलीनों के कब्जे का खतरा है और उनके पास जो संसाधन हैं वे अपेक्षाकृत कम हैं।

जैसा कि हमने देखा, थोड़े-से राज्य पंचायती राज संस्थाओं की मज़बूती हेतु सुधारों को लागू करने की दिशा में लगातार प्रगति किए जा रहे हैं। इसके लिए, पंचायतों को संसाधनों का प्रवाह बढ़ाया गया है अथवा ग्राम सभाओं को निर्वाचित प्रतिनिधियों और सरकारी अधिकारियों से जवाबदेही की माँग करने का अधिकार दिया गया है। किन्तु अधिकांश राज्यों में, विशेषकर सर्वाधिक गरीबी वाली हिन्दी भाषी पट्टी में, पंचायतों को पर्याप्त अधिकार और संसाधन नहीं दिए गए हैं और उनका प्रभाव भी अधिक नहीं रहा है। उन राज्यों में अनेक साझा कारक देखे जा सकते हैं, जहाँ पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों और ज़िम्मेदारियों को मज़बूत करने की ईमानदारी से कोशिशें हुई हैं। राजनीति और विचारधारा की भिन्नताओं के बावजूद, इन राज्यों में तीन प्रकार की स्थितियाँ समान हैंः राजनीतिक स्तर पर प्रतिबद्ध नेतृत्व, सहायक विधायी तथा नीतिगत वातावरण; और, पर्याप्त रूप में प्रभावी सरकारी संस्थाएँ। एक सक्रिय नागरिक समाज भी संवैधानिक प्रावधानों के कार्यान्वयन की प्रगति की वकालत और निगरानी के माध्यम से राज्य की कार्यवाही को बढ़ावा देने में सहायक होता है। ग़ैर-सरकारी संगठन भी निर्वाचित प्रतिनिधियों और स्थानीय अधिकारियों को प्रशिक्षण देकर और पंचायती राज संस्थाओं को मिले अधिकार और ज़िम्मेदारियों के बारे में जानकारी देकर सहायक भूमिका निभा सकते हैं, किन्तु उनकी भूमिका सफल परिणामों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण नहीं होती, जैसा कि पश्चिम बंगाल के अनुभव से स्पष्ट है।

23.3 भावी मुद्दे

पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) और नगर निकायों को क्रियाशील और प्रभावी बनाने के सम्बन्ध में, कुछ विद्वानों ने संवैधानिक संशोधन की बुद्धिमानी पर गंभीर सवाल उठाए हैं। उदाहरण के लिए, निर्मल मुखर्जी ने ये मुद्दे उठाए हैंः (क) क्या कोई संवैधानिक प्रावधान अपने आपमें राजनीतिक संकल्प का पर्याप्त विकल्प हो सकता है? (ख) राज्यों के कठोर यथार्थ को देखते हुए, क्या इन विधानों को शब्दशः लागू किया जाएगा, अथवा वे कागजी कानून ही बने रहेंगे? (ग) क्या राज्य स्तर से नीचे विकेन्द्रीकरण को सर्वाधिक केन्द्रीयकारक माध्यम – संवैधानिक संशोधन – की मदद से लागू करना वांछनीय है? इसके अतिरिक्त, मुखर्जी की राय थी कि संवैधानिक संशोधन का अर्थ होता है राज्यों पर एक समान प्रावधान थोपना जबकि उनकी प्रशासनिक संस्कृति में, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में और जनसंख्या में घोर असमानताएँ हैं?

मुखर्जी के तर्क शायद सही हैं। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि संवैधानिक संशोधन देश में बुनियादी स्तर की जीवंत लोकतांत्रिक संस्थाएँ बनाने के लिए अत्यधिक वांछनीय था। यहाँ हम संवैधानिक संशोधन से सम्बन्धित कुछ मुद्दों पर विचार करेंगे।

बीस लाख से अधिक जनसंख्या वाले राज्यों के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तीन स्तरीय समान व्यवस्था की संरचनागत भिन्नताओं के संदर्भ में, अपनी सीमा है। और यही बात 20 लाख से कम

जनसंख्या वाले राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों पर लागू होती है। यदि इसे राज्यों के विवेक पर छोड़ दिया जाता, तो बेहतर होता।

संवैधानिक संशोधन विधेयक जब पेश किया गया था, तो इसमें ग्राम तथा माध्यमिक स्तर पर अध्यक्ष पद के लिए प्रत्यक्ष चुनाव का प्रावधान था। जिला स्तर पर इसका निर्णय राज्य विधान मंडल पर छोड़ दिया गया था। संसद की संयुक्त समिति ने इस सवाल पर विचार किया, किन्तु केवल ग्राम स्तर पर प्रत्यक्ष चुनावों की वकालत की। समिति के मार्क्सवादी सदस्यों ने किसी भी स्तर पर प्रत्यक्ष चुनावों पर आपत्ति जताई थी। किन्तु सर्वसम्मति की खातिर उन्होंने यह सुझाव दिया कि ग्राम स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव के मुद्दे को राज्य के विधान मंडलों पर छोड़ा जा सकता है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चुनाव के गुण-दोषों पर जाए बग़ैर, यह कहा जा सकता है कि अध्यक्ष पद के लिए प्रत्यक्ष चुनाव तो राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार के अधिक अनुकूल है, और अप्रत्यक्ष चुनाव मंत्रिमंडलीय किस्म की सरकार के अनुकूल। भारत में मंत्रिमंडलीय किस्म की प्रणाली ही लागू है।

इस अधिनियम में एक बड़ी खामी यह है कि यह स्वशासन की संस्थाओं के पंचायती राज के विचार के प्रति विरोधाभासी और अस्थिर दृष्टिकोण रखता है। विधेयक में पंचायतों को "स्वशासन की संस्था" के रूप में ठीक ही परिभाषित किया गया था, किन्तु बाद में इन संस्थाओं के कार्यों को परिभाषित करते समय, इसे विकास कार्यों तक सीमित कर दिया गया, जैसा कि अनुच्छेद 243 जी (ए) और (बी) से स्पष्ट है। हमारे विचार में, प्रत्येक स्तर पर कानून और व्यवस्था कार्य नहीं हुआ तो स्वशासन की कोई भी संस्था नाममात्र की रह जाती है।

जब से "जिला शासन" अथवा "तीसरे स्तर के शासन" का विचार अस्तित्व में आया है, उसकी महत्त्वपूर्ण बात का दु:खद लोप हो गया है। इस सम्बन्ध में निर्मल मुखर्जी का यह कहना ठीक ही है कि स्वशासन की संस्थाओं की अवधारणा को इस तरह नरम बनाना तो चिंतन और प्रारूप लेखन का दोष है।

पिछले अनुभव से स्पष्ट होता है कि जहाँ कहीं पंचायतें स्थापित नहीं हो पाई हैं अथवा थोड़े समय की सफलता के बाद उखाड़ दी गई हैं, वहाँ यह देखा गया है कि सांसद और विधायक इन संस्थाओं के प्रति मित्रवत नहीं रहे हैं। स्थानीय शासनों के प्रति उदासीन रहने के अलावा, वे इन स्थानीय निकायों के प्रति बैरभाव भी रखते रहे हैं। वे एक ओर सत्ता केन्द्र को चुनौती के रूप में उभरता नहीं देखना चाहते हैं और न ही वे अपनी मौजूदा शक्तियों को क्षीण होते देखना चाहते हैं। उनकी भावनाओं को शांत करने और उनकी ओर से किसी भी शरारत को पहले ही रोक देने के प्रयास में, अब पारित अधिनियमों में, सांसदों और विधायकों को पंचायतों में सदस्यता और मतदान के अधिकार दे दिए गए हैं। यह निश्चय ही पंचायतों के लिए घातक होगा जबकि हम उन्हें मज़बूत करना चाहते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक और चिंतनीय बात है सांसदों और विधायकों की "स्थानीय क्षेत्रीय विकास योजनाएँ"। कई लोग शायद हमारी शंका से सहमत न हों, किन्तु यह लगभग निश्चित है कि इन योजनाओं से स्थानीय समुदाय पर सांसदों और विधायकों की जकड़ और भी मज़बूत होगी और बुनियादी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं के सशक्तिकरण की मूल अवधारणा शायद लुप्त हो जाएगी (वाघवानी और मिश्र, 1996)।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो अभी सामनें नहीं आया है, वह राज्यों के खाते में है जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाएँ और अधिकारों तथा विभागों की माँग कर रही हैं, कि केन्द्र कब राज्य को अधिक शक्तियाँ (अधिकार) देगा? इस सवाल का जवाब तो देना ही होगा – आज नहीं, तो निकट भविष्य में।

महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों और अध्यक्ष पद का आरक्षण मौन क्रांति की दिशा में उठाया गया एक कदम है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि पंचायती राज संस्थाएँ महिलाओं के लिए लक्षित सामाजिक बदलाव ला सकती हैं। किन्तु शुरुआती काम महिलाओं के लिए बेहद मुश्किल भरा है।

लोकतांत्रिक राज्य तंत्र में स्वस्थ परिपाटी का विकास अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात है। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली ऐसे मूल्यों का उदाहरण है। अपने समाज में भी हमें उन्हें हमारे समाज और राज्य तंत्र की रीढ़ के रूप में मान्यता देनी होगी। अमेरिका में राज्य स्तर से नीचे की देहाती और शहरी स्थानीय शासन संस्थाएँ कितने ही दशकों से संतोषजनक ढंग से वजूद में हैं और उनकी सतत्ता और सफलता का एक कारण लोकतंत्र की परंपरा बताई जाती है जिसे उन्होंने अत्यंत सतर्कता से बचा कर रखा है। किन्तु, हमारे देश में परिपाटियों का उल्लंघन बहुत हुआ है। इस संदर्भ में संवैधानिक संशोधन का शायद कोई अर्थ नहीं रह जाता।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए यह दुःख की बात है कि 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन में जो पंचायतों और नगरपालिकाओं को स्वशासन की संस्थाएँ बनाने का मूल विचार है उसकी हाल के राज्य विधानों में अत्यधिक उपेक्षा हुई है। ज़रूरत इस बात की है कि विधायक दलगत आग्रहों को तोड़ते हुए कानूनों को सही भावना में लागू करें, और जनता को सत्ता सौंपने और मौजूदा व्यवस्था की खामियों को दूर करने के उद्देश्य को पूरा करें। जब संविधान के तीनों स्तर – केन्द्र, राज्य और स्थानीय निकाय – नियमित और सक्षम ढंग से काम करेंगे, केवल तभी संविधान की संघीय प्रकृति, राज्य तंत्र की लोकतांत्रिक प्रकृति को सुरक्षित रखा जा सकेगा। अन्यथा, संविधान अपने कथन और कार्यान्वयन में अत्यंत विकृत हो जाएगा।

यह कहा जा सकता है कि भारत में पंचायती राज संस्थाएँ अपने गठन के समय से ही "व्यावहारिक" रही हैं और कभी अपनी जड़ें नहीं जमा पाई (स्थापित नहीं हो पाई) हैं। किन्तु पंचायती राज संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय चुनावों की अनियमितता के चलते भी नष्ट नहीं हुए हैं। इससे उनकी अंतर्निहित शक्ति का पता चलता है, और शायद यही बात उन्हें ऐसी अकेली संस्थाएँ बनाती हैं जो घातक स्थितियों के बावजूद टिकी हुई हैं। इसलिए ज़रूरत इस संकल्प की है कि पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों को सक्षम लोकतांत्रिक संस्था बनाया जाएगा जिस पर सच्चा लोकतंत्र फूलेगा-फलेगा।

यह उल्लेखनीय है कि पंचायती राज संस्थाएँ लोकतंत्र की ऐसी प्राथमिक संस्थाएँ हैं जहाँ, गाँव, ब्लॉक अथवा प्रखण्ड और जिला स्तरों के लोग भागीदारी कर सकते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य किसी भी संस्था में स्थानीय लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी नहीं हो सकती। सत्ता के हस्तांतरण की शुरूआत यहीं से होती है, और यहीं से लोग स्थानीय स्तरों पर सार्वजनिक मामलों और विकास की मुख्यधारा में प्रवेश करते हैं। पंचायती राज संस्थाएँ, विशेषकर ग्राम सभाएँ, प्लेटो और अरस्तू के समय से यूनानी नगर-राज्यों जैसी "प्रत्यक्ष लोकतंत्र" की अवधारणा को आज के लिए और आगामी शताब्दियों के लिए औचित्यपूर्ण बनाती हैं। ग्राम सभाओं का गठन ऐसे स्थान के रूप में किया गया है जहाँ विकास के मुद्दों पर चर्चा होनी चाहिए, विकास कार्यक्रम शुरु किए जाने चाहिए और विकास कार्यक्रमों के लाभार्थियों का चयन किया जाना चाहिए। ग्राम सभाओं की शक्ति और प्रभावशीलता आने वाले वर्षों में दिखाई देगी।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि भारत में आर्थिक उदारीकरण की जो गति है, उसे देखते हुए पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों की संभावना में बढ़ोतरी ही होगी। वास्तव में, वे जे आर वाई (JRY), की तरह गरीबी उन्मूलन और रोज़गार सृजन के अन्य विशेष कार्यक्रमों के सही ढंग से कार्यान्वयन के लिए निगरानी रखने वाले निकायों की भूमिका निभाएँगे। वास्तव में, स्थानीय संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय (Urban Local Bodies; ULBs) ग्रामीण इलाकों में सामाजिक-आर्थिक विकास की गति को तेज करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

यह बात उत्साहजनक है कि राज्यों को 1994-95 से अपने कुल योजना परिव्यय का 36 प्रतिशत उप-राज्य स्तरीय आयोज़ना निकायों को देना पड़ा है। लघु-स्तरीय आयोजना के लिए निर्दिष्ट 36 प्रतिशत

परिव्यय में से 30 प्रतिशत ग्रामीण जल आपूर्ति, सड़क, बिजली, शिक्षा तथा अन्य स्थानीय योजनाओं पर खर्च के माध्यम से, उप-राज्य स्तरीय आयोजना निकायों को चला जाता है। ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल 29 विषयों और बारहवीं अनुसूची में शामिल 18 विषयों की सूची में लचीलापन है और इसमें स्थानीय संसाधनों और समस्याओं के अनुसार योजनाओं का चयन पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। राज्यों के योजनागत परिव्यय का पाँच प्रतिशत तो "संयुक्त कोश" होता है – और बहुत कम का हस्तांतरण जिला अथवा ग्रामीण निकायों को उनके विवेक अनुसार खर्च करने को किया जाता है। शेष एक प्रतिशत गरीबी उन्मूलन और रोज़गार सृजन कार्यक्रमों के लिए होता है, जिनके लिए गाँव के स्तर पर योजना बनाई जाती है और धन उपलब्ध कराया जाता है। इनके सही कार्यान्वयन के लिए, पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों की गतिविधियों और कार्य प्रणाली की ध्यान से निगरानी और चौकसी करनी होगी जिससे कि वे अपनी सीमाएँ न लांघें और अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वालों को अपूरणीय क्षति न पहुँचाएँ। जिसके लिए लेखा परीक्षा के एक सर्वसम्मत तथा समरूप दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

यह कहा जा सकता है कि हमारे बहुलवादी समाज के लोकतंत्रीकरण को मात्र राज्य की विधायी और प्रशासनिक कार्यवाहियों के माध्यम से सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। इन सामर्थ्यदायक प्रावधानों के लिए ग़ैर-सरकारी संगठनों, शैक्षिक तथा पेशेवर निकायों, राजनीतिक दलों के भारी सहयोग की आवश्यकता होगी तथा अन्य समूहों को चाहिए कि वे सही जगह सत्ता की बहाली के लिए दबाव बनाने की प्रक्रिया में शामिल हों। विकेन्द्रीकरण की समूची कवायद में स्कूल अध्यापक, प्रगतिशील किसान, सामाजिक कार्यकर्त्ता और पेशेवर जैसे लोगों को शामिल किया जाना चाहिए। सबसे बड़ी बात, पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे अपनी चुनावी शत्रुता से ऊपर उठकर सोचें। उन्हें यह समझाया जाए कि चुनाव खत्म होते ही यह शत्रुता भी खत्म हो जाती है। वास्तव में, पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव मेले जैसे दिखने चाहिए जिससे कि लोग भारी संख्या में उनमें पहुँचें (वाघवानी और मिश्र, 1996)।

भारत में नगर निकायों और पंचायती राज संस्थाओं की संभावनाओं को प्रबल करने हेतु कुछ सुझाव इस प्रकार दिए गए हैं :

- पंचायतों और नगरपालिकाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सरकारी अधिकारियों पर नजर और नियंत्रण रखना चाहिए कि वे अधीनस्थों की भूमिका न निभाकर, पंचायत की सेवा करें।
- प्रत्येक राज्य में, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक अंतर-जिला पंचायत परिषद बने जो पंचायतों के विधायी, वित्तीय और प्रशासनिक मामलों को निपटाए। जिला स्तर पर, आयोजना व्यवस्था का प्रमुख जिला पंचायत का अध्यक्ष हो।
- वित्तीय जवाबदेही की ज़रूरतों का प्रारूप लेखा महानियंत्रक परीक्षक (Comptroller and Auditor General; CAG) तैयार करे और वहीं उस पर निगरानी रखें, और भंग करने का अधिकार और निचले स्तर की पंचायत इकाइयों की जवाबदेही पंचायत के अगले उच्चतर स्तरों पर होनी चाहिए, सरकारी अधिकारियों को नहीं, तभी समकक्षी समूहों की जवाबदेही तय होगी।
- सहकारिता संगठनों के चुनाव सुनिश्चित करने हेतु एक संवैधानिक संशोधन अनिवार्य है क्योंकि एक जीवंत सहकारिता प्रणाली सफल पंचायती राज के लिए अहम है।

23.4 जन आकांक्षाएँ

जन आकांक्षाओं के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं – लोगों की आकांक्षाएँ क्या हैं? और उन्हें कैसे पूरा किया जाए? जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, तो यह कहा जा सकता है कि जन

आकांक्षाओं में साम्य शामिल है, अर्थात् सामाजिक न्याय, निर्णय की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी, कार्यान्वयन और निगरानी और उसका मूल्यांकन और बदलाव और विकास के लाभों में हिस्सेदारी, बुनियादी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रदर्शक चरित्र, अनुसूचित जातियों – अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं समेत सामाजिक दृष्टि से वंचित सभी तबकों के हितों की रक्षा, सामाजिक सौहार्द, झगड़ों – फसादों से मुक्ति, स्वतंत्रता और समानता का बोध आदि।

नीति आयोजकों और कार्यान्वयनकारी अभिकरणों के भरसक प्रयासों के बावजूद, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से लेकर आज के दिन तक हम लोगों की लोकप्रिय भागीदारी के अभाव के चलते लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में बुरी तरह से विफल रहे हैं। पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों का पिछला अनुभव भी यही बताता है कि वे स्थानीय समुदायों में समरसता पैदा करने, झगड़ों और गुटीय लड़ाइयों को कम करने, और सामूहिक हितों की रक्षा करने में असमर्थ रहे हैं। इस तरह वे लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को सम्मान देने में बुरी तरह से असफल हुए हैं। चुनावी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ग्रामीण इलाकों में कुछ राजनीतिक विकासक्रमों से भी यही पता चलता है कि पंचायती राज संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय बुनियादी स्तर पर संसदीय प्रणाली की प्रक्रिया के मामले में गलत रास्ते पर निकल गए और इन संस्थाओं को धीरे-धीरे स्वार्थ पूर्ति करने वालों और सत्ता के लोभियों की पनाहगाह बना दिया गया। पंचायती राज संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय अतीत में बुनियादी स्तर से ऊपरी स्तरों की ओर संचार, प्रभाव और नियंत्रण का एक ठोस तंत्र बनाने में असफल रहे। लोगों की इच्छा को संस्थागत रूप देने में भी वे विफल रहे।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने सामाजिक और आर्थिक बदलाव के माध्यम की भूमिका भी नहीं निभाई। नेतृत्व के संदर्भ में परिभाषित जन भागीदारी की अवधारणा भी वांछित परिणाम नहीं दे पाई। पंचायती राज/नगरपालिका की राजनीति के परिणामस्वरूप उभरने वाले नेतृत्व में लोगों की आकांक्षाएँ परिलक्षित नहीं हुईं और यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह गया कि ढाँचा और नेतृत्व दोनों को लोगों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी कैसे बनाया जाए।

पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के अस्तित्वमान रहने के लिए कुछ पूर्व शर्तें हैं, जो इस प्रकार की हैं :

1) राजनीतिक मूल्य के तौर पर, पंचायती राज और नगरपालिकाओं के लिए प्रतिबद्धता और उसके परिणामस्वरूप उसे स्थापित करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति भी होनी चाहिए;

2) यह नहीं भूलना चाहिए कि पंचायती राज और नगरपालिकाओं में फिर से जान डालने अथवा उन्हें फिर से विकसित करने का प्रयास, वास्तव में अभी तक वंचित रहे तबकों को मुख्यधारा में लाकर भारतीय राज्य तंत्र के पुनर्निर्माण का ही प्रयास है; और

3) पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों को ग्रामीण, शहरी, स्थानीय स्तरों के विकास की अकेली संस्था समझा जाना चाहिए।

इन संस्थाओं की विफलता के अन्य जो भी कारण रहे हों, एक उल्लेखनीय और ऐसा कारण है जिस पर विद्वानों में आम सहमति है, और वह है हमारे समाज के कमज़ोर तबकों के हितों की रक्षा करने में इसकी असमर्थता। ऐसा क्योंकि नहीं हुआ, तो बुनियादी स्तर पर राजनीतिक सत्ता का समान वितरण भी नहीं हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि कमज़ोर तबके न केवल विकास कार्यक्रमों से वंचित रहे बल्कि अधिकांश मामलों में उन्हें विकास की प्रक्रिया से बाहर भी रखा गया।

जब 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक के प्रारंभ में पंचायती राज संस्थाओं को शुरू किया गया, तो लोगों की आशाएँ और आकांक्षाएँ बहुत अधिक थीं। कुछ मामलों में तो पंचायती राज नेतृत्व

लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं के प्रति सजग रहा, किन्तु पर्याप्त वित्तीय मदद और नौकरशाही का सहयोग नहीं मिलने के कारण वे असहाय हो गए। यही नहीं, कमज़ोर तबकों और ग्रामीण समुदाय के लिए जो भी विकास कार्यक्रम चलाए गए उनमें उचित आयोजना और जन भागीदारी का अभाव था। ये कार्यक्रम नौकरशाही-उन्मुख और स्थानीय स्तर की नौकरशाही द्वारा कार्यान्वित थे और वे स्थानीय समुदाय की आशाओं और आकांक्षाओं से बहुत दूर थे। स्थानीय समुदाय की आवश्यकताओं और माँगों के सही आंकलन के अभाव में, वे एक ढर्रे पर आकर सिमट गए (वाघवानी और मिश्र, 1996)।

दूसरे प्रश्न से जुड़ा एक और प्रश्न यह उठता है कि क्या 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा कर पाएँगे? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कम से कम कागज पर तो यही दिखता है कि पंचायती राज संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने की स्थिति में होंगे। हमारी धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि जन भागीदारी का जो तत्व अभी तक गायब था, उसे वर्तमान अधिनियमों से सुनिश्चित किया जा सकता है। समय-समय पर होने वाले चुनाव स्थानीय समुदाय को पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं कि युवा ऊर्जावान और कर्मोन्मुख नेतृत्व ग्रामीण समुदाय के सभी तबकों से आए। महिलाओं, अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों को प्रदान किए गए आरक्षण से निर्णय की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी और प्रभावशीलता सुनिश्चित होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शुरुआती दौर में उपर्युक्त वर्गों के विशिष्ट वर्ग का बोलबाला रहेगा, किन्तु स्थानीय समुदाय उनके कार्य के आधार पर उनका मूल्यांकन करने की स्थिति में होगा।

ग्राम सभा को बुनियादी स्तर के लोकतंत्र की एक प्रभावी संस्था बनाने के लिए काफी सतर्कता बरती गई है। यदि वे सचमुच प्रभावी बन गईं, तो वे अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से स्वार्थी और पक्षपाती कुलीनों को हटाने की स्थिति में आ सकती हैं। यदि ऐसा हो जाता है, तो कुलीनों की आवाजाही सम्बन्धी पारेटो की अवधारणा सच हो जाएगी और पंचायती राज/नगरपालिका नेतृत्व में धीरे-धीरे और बार-बार बदलाव और पुनः बदलाव होगा, जो लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में सहायक हो सकता है।

क्योंकि 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में जिला स्तरीय और केन्द्रीकृत आयोजना पर ज़ोर दिया गया है और जिला आयोजना परिषदों का गठन किया गया है, तो यह आशा की जाती है कि लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को परिलक्षित करने वाली आवश्यकता-आधारित आयोजना आम बात होगी। साथ ही, वे केवल कागज तक ही सीमित नहीं रहेंगी बल्कि प्रभावी ढंग से लागू की जाएँगी, क्योंकि कार्यान्वयन का काम स्वयं पंचायती राज संस्थाएँ और शहरी स्थानीय निकाय करेंगे।

यह आशा की जा सकती है कि विकास और रोज़गार सृजन के केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम भी, स्थानीय समुदाय के लाभ के लिए, प्रभावी ढंग से लागू किए जाएँगे क्योंकि उन्हें पंचायती राज संस्थाओं की सीधी निगरानी में लागू करना होता है। यहाँ तक कि लाभार्थियों की पहचान भी उन्हीं के द्वारा की जाती है। अधिनियम के ये आशापूर्ण प्रावधान हमें लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के प्रति आशावादी होने को बाध्य करते हैं।

अधिनियम में प्रभावी स्थानीय कर प्रशासन का प्रावधान और राज्य वित्त आयोग का गठन भी पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों की वित्तीय हालत के लिए एक उजली अथवा स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। अतीत में, वित्तीय संसाधनों के अभाव में ये संस्थाएँ बिल्कुल अपंग हो गई थीं और लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाईं।

यही नहीं, पिछले कुछ वर्षों में विकास सम्बन्धी गतिविधियों में बदलाव के प्रति ग्रामीण लोगों की धारणा बहुत बदली है। राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता ने भी ग्रामीण समाज के अभी तक वंचित रहे

तबके की आँखें खोल दी हैं। फिर भी, बेहतर परिणामों के लिए पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों में जानबूझकर बदलाव लाने का कोई भी प्रशासनिक प्रवर्तन तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक केन्द्र से राज्यों, राज्यों से जिलों, और जिलों से पंचायती इकाइयों तक सत्ता का हस्तांतरण सच्चे अर्थ में युक्तिपूर्ण (तर्कसंगत) नहीं होता और संपन्न नहीं किया जाता। लोगों को सत्ता देने की कोई भी बात तब तक बेमानी है जब तक सत्ता का उपयोग बुनियादी स्तर पर लोग समाज के लिए नहीं करते और राजनीतिक चेतना सही दिशा में प्रवाहित नहीं होती। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम का अन्य लक्ष्य ग्रामीण और शहरी विकास कार्यक्रमों में राज़नीति और नौकरशाही के हस्तक्षेप को कम करना भी है, जिसका उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं को सुगम बनाना है। ऐसा लग रहा है कि 1946 में जो कुछ कहा था वह 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मदद से साकार होने जा रहा है, गांधीजी का कथन इस प्रकार है :

"स्वाधीनता सबसे निचले स्तर से शुरु होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गाँव एक गणतंत्र होगा और पंचायत के पास पूरे अधिकार होंगे। इसलिए, प्रत्येक गाँव को आत्मनिर्भर और अपने मामलों को स्वयं संभालने के योग्य होना है, पूरी दुनिया से अपनी रक्षा करने की हद तक भी।"

और, उन्होंने कहा थाः

"असंख्य गाँवों से गठित इस ढाँचे में हमेशा फैलने वाला, कभी भी आरोही न होने वाला दायरा होगा। जीवन एक ऐसा पिरामिड (सूचना स्तम्भ) होगा जिसके शिखर को उसका आधार संभालेगा। परन्तु यह एक महासागरीय चक्र होगा जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा जो तब तक जब तक अंततः समग्र व्यक्तियों को गठित एक जीवन नहीं बन जाता जो कभी भी अपनी धृष्टता में न केवल आक्रमक न हों अपितु विनम्र हों, महासागरीय चक्र जिसकी वे अभिन्न इकाइयाँ हैं के प्रभुत्व में शामिल हों। गावों के चक्र के लिए मर मिटने को हमेशा तैयार रहेगा। इसलिए पिरामिड की सबसे बाहरी परिधि आंतरिक चक्र को कुचलने में शक्ति का प्रयोग नहीं करेगी, अपितु अंदर स्थित सभी को मज़बूती देगी और अपनी शक्ति उसी से प्राप्त करेगी।"

महात्मा गाँधी के विचार और स्वतंत्रता-पूर्व युग के शहीद भगत सिंह जैसें कुछ क्रांतिकारियों के विचारों का समर्थन करते हुए, यह आशा की जा सकती है कि एक जनांदोलन चलाकर यह माँग की जा सकती है कि पंचायती राज व्यवस्था में विकास कार्यों के लिए धन का हस्तांतरण पहले प्रति व्यक्ति आधार पर ग्राम सभाओं को किया जाए। यह ज़िम्मेदारी ग्राम सभा की होगी कि वह अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार अपनी आवश्यकताएँ तय करे कि वह इसमें से कितना अपने लिए रखेगी, कितना माध्यमिक स्तर को अंशदान करेगी, और कितना जिला स्तरीय पंचायतों को देगी। मसलन, कोई ग्राम सभा यह तय कर सकती है कि वह पुश्ते की जगह बाढ़ का इंतजाम करेगी। प्रारंभ में, इसके लिए माध्यमिक और जिला स्तरों पर ग्राम सभाओं और पंचायतों के बीच बातचीत चलेगी और इसलिए प्रगति की रफ्तार धीमी होगी। किन्तु फिर लाभार्थियों की भागीदारी और प्रगति की धीमी रफ्तार निश्चय ही विकासहीनता और निर्भरता के मौजूदा नमूने से बेहतर होगी। यही नहीं, इस समूची प्रक्रिया का लक्ष्य जन साधारण की चेतना जगाने और उसकी समझ बढ़ाने और उन्हें सक्रिय बनाने का होगा।

यहाँ हम एक और संभावना पर गौर करेंगे। कोई ग्राम सभा (अपने वास्तविक सदस्यों) बेरोज़गार व्यक्तियों के हित में (टूथपेस्ट, नहाने और कपड़े धोने के साबुन) जैसी कुछ वस्तुओं पर अपने इलाके में रोक लगा सकती है। वह अकेले ही अथवा पड़ोसी ग्राम सभाओं के साथ मिलकर इसे अंजाम दे सकती है। इस प्रक्रिया में वह ग्रामीण और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन प्रदान कर सकती है और रोज़गार पैदा कर सकती है। यदि यह स्थिति कुछ ही इलाकों तक सीमित रहती है तो इसकी उपेक्षा भी हो सकती है। किन्तु यदि यह लोगों को पसंद आ गई और बड़े क्षेत्र में फैल गई, तो इससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विदेशी सहयोगियों और उनके भारतीय टहलुओं के और अंततः नव-साम्राज्यवाद

के हितों को नुकसान पहुँचेगा। "मुक्त बाजार" के प्रति वचनबद्धता की खातिर, इसके दमन के लिए दबाव डाला जाएगा। पूरी संभावना है कि भारतीय शासक वर्ग इस दबाव में आ जाएगा। किन्त समस्या यह है कि पंचायती राज व्यवस्था की अन्य सभी संस्थाओं का तो अधिक्रमण किया जा सकता है, ग्राम सभाओं का नहीं। उनका वजूद हमेशा कानूनी ओर संवैधानिक रहेगा। संघर्ष कैसे आगे बढ़ेगा, इसका रास्ता क्या होगा, यह कब क्रांति का रूप लेगा, यह सब ग्राम सभाओं के सदस्यों पर निर्भर करेगा। विभिन्न ग्राम सभाओं की अपनी और बाहरी स्थितियों के अनुसार अन्य संभावनाएँ भी बन सकती हैं। किन्तु एक बात तो निश्चित है कि संघर्ष का रूप चाहे जो भी हो, उसके साथ जन चेतना भी बढ़ेगी। इतिहास हमें यही सबक सिखाता है और जन चेतना बढ़ाना ही समय की एकमात्र आवश्यकता है।

23.5 सारांश

इस इकाई को समाप्त करते हुए, हमारे दिमाग में एक और प्रश्न आता है, और यह संशय सभी को हो सकता है, कि 2020 तक पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों का हश्र क्या होगा? इस संशय के सम्बन्ध में, हम तो बुनियादी स्तर के लोकतंत्र के रूप में इन संस्थाओं और निकायों के भविष्य के प्रति बिल्कुल आशावान हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन संस्थाओं और निकायों की अधिकांश सफलताएँ सम्बन्धित राज्य सरकारों के राजनीतिक संकल्प पर निर्भर करेंगी। किन्तु, पंचायती राज और नगर निकाय चुनावों को नियमित करके और उन्हें संवैधानिक दर्जा प्रदान करके उनके उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है। निस्संदेह, राज्य और केन्द्र स्तर के चुनाव नियमित होते हैं, किन्तु हम अपने लोकतांत्रिक राज्य तंत्र को अभी तक एक उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाने में सफल नहीं हुए हैं। किन्तु, हमारा मानना है कि यह स्थिति ग्रामीण राजनीतिक व्यवस्था को काफी प्रभावित नहीं कर पाएगी। यह सच है कि ग्रामीण जन साधारण अनपढ़ और अनजान हैं, किन्तु वे बहुत प्रवण हैं और समुदाय के व्यापक हित में उपयुक्त निर्णय कर सकते हैं। यही नहीं, अंनिवार्य और नियमित चुनावों के कारण, वे पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के नेतृत्व को बदलने और फिर-फिर बदलने की स्थिति में होंगे और उन्हें यह अहसास करा देंगे कि वही नेता ठहर पाएँगे तो प्रतिबद्ध और निष्पक्ष हैं और ग्राम समुदाय के विकास को ध्यान में रखते हैं। इसके अतिरिक्त, हम यह भी आशा करते हैं कि ग्रामीण जन साधारण में बढ़ती चेतना के फलस्वरूप ग्राम सभाएँ आने वाले वर्षों में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाएँगी। इस तरह हम आशा करते हैं कि 2020 के अंत तक, ये संस्थाएँ और ये निकाय ग्रामीण समुदाय में गहरी पैठ बना सकेंगे और ग्राम्यांचल में बदलाव के वास्तविक वाहक बन सकेंगे। हमें बस एक खतरा, राज्य सरकारों की ओर से दिखाई देता है। यह संशय इस तथ्य के कारण है कि 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों में राज्यों को यह अधिकतम छूट प्रदान की गई है कि वे जब और जैसे चाहें अपने अधिनियमों में उपयुक्त संशोधन कर सकते हैं, और यह प्रक्रिया शायद शुरु भी हो गई है। और यदि राज्य सरकारों का यह नकारात्मक रवैया जारी रहता है तो इन संस्थाओं और इन निकायों को राज्य सरकार के लापरवाही रवैये से बचाना मुश्किल हो जाएगा। हम फिर भी आशावान हैं कि स्थानीय शासन का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है और वे लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा कर पाएँगी, क्योंकि समाज के मानक नियम, सामाजिक स्तरीकरण और मूल्यों में देश में चल रही लोकतांत्रिक प्रक्रिया के फलस्वरूप बहुत तेजी से बदलाव आ रहा है।

उभरते सामाजिक आंदोलन, बदलते सामाजिक रिश्तों, ग्राम सभाओं की प्रभावशीलता और पंचायती राज तथा नगर निकायों की राजनीति में भविष्यवादी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में, इसी तरह का आशावाद अनेक समाज विज्ञानियों ने दिखाया है। मसलन, रजनी कोठारी की राय में, समाज के कामकाज को संभालने वाले तंत्र के रूप में लंबे अनुभव वाला "ऊपर से नीचे" वाला नमूना विफल हो चुका है। और इसी विफलता की पृष्ठभूमि में नए खिलाड़ियों और स्तरों, राजनीतिक अभिव्यक्ति के नए स्वरूपों और बुनियादी स्तर की राजनीति की विषयवस्तु की नई परिभाषा का उत्थान महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये नए खिलाड़ी और नई परिभाषाएँ क्या हैं और कौन सी हैं? पहले तो स्वयं "लोगों" का, चेतना और व्यवहार में पुनरोदय हो रहा है, वे अपने लोकतांत्रिक अधिकारों पर ज़ोर दे रहे हैं और स्थापित व्यवस्था को चुनौती प्रदान कर रहे हैं, और स्थानीय स्तर पर समूची सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित कर रहे हैं। और, दूसरी बात है राजनीतिक प्रक्रिया में मध्यस्थों के एक नए वर्ग का उत्थान, जिन्हें आम तौर पर कार्यकर्त्ता कहा जाता है, जो सामाजिक मूल की दृष्टि से उच्च और मध्यम वर्ग के हैं किन्तु स्वयं को समाज के निचले वर्गों के साथ रखते हैं – अर्थात् गरीब, दबे-पिसे और बहिष्कृत, अछूत और दीन-हीन जनजातियों और जातीय अल्पसंख्यकों से लेकर यौन, जातीय, पारिस्थितिकीय और पीढ़ीगत भेदभाव, अत्याचारों और हिंसा से प्रभावित लोगों तक। इसी पृष्ठभूमि में, हमें लगता है कि ग्रामीण जन साधारण अवसर के अनुसार अपनी क्षमता दिखाएँगे और स्थानीय निकायों का भविष्य उज्ज्वल दिखाने में सहायक होंगे, जिससे आने वाले वर्षों में लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति संभव होगी।

23.6 मुख्य अवधारणाएँ

नियामक (Regulation) : नागरिकों के सामाजिक और आर्थिक कार्यकलापों पर सरकार का पूरी तरह से नियंत्रण; प्रशासनिक अभिकरणों की कानून निर्माण प्रक्रिया जिसमें कानूनों का सरकारी हस्तक्षेप हो।

पुनर्आविष्कारशील सरकार (Reinventing government) : इस समय निजता पर महत्त्व के साथ निरन्तर सुधार वाली सरकार की उन्नतशील प्रथा की नवीनतम अभिव्यक्ति है।

गणतंत्र (Republic) : शासन का वह स्वरूप जिसमें प्रभुसत्ता उन लोगों के हाथों में होती हैं जो राजनीतिक निर्णयों की प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व के लिए अभिकर्त्ताओं को चुनते हैं।

प्राधिकृत विधान अथवा कानून (Authorising Legislation) : संवैधानिक कार्यवाही जो किसी विशेष कार्यक्रम या अभिकरण की स्थापना या जारी रखने की अनुमति देती है।

23.7 संदर्भ व अन्य लेख

बेहर, अमिताभ और योगेश कुमार, डिसेंट्रलाइजेशन इन मध्य प्रदेश, इंडिया, पंचायती राज टू ग्राम स्वराज (1950-2001), वर्किंग पेपर 170, ओवरसीज डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट, लंदन, 2002।

बुच, निर्मला, पंचायत्स एंड विमिन, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, 2000, पृष्ठ 34-41।

कोन्यर्स, डायना, डिसेंट्रलाइजेशन : द लेटेस्ट फैशन इन डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एंड डेवलपमेंट*, खंड 3, संख्या 2, 1983, पृष्ठ 91-110।

क्रुक, रिचर्ड सी. और ऐलन एस. स्वेरिसन, डिसेंट्रलाइजेशन एंड पॉवर्टी एलिविएशन इन डेवलपिंग कंट्रीज : कम्पैरेटिव एनालिसिज ऑफ इज़ वेस्ट बंगाल यूनीक? वर्किंग पेपर, 130, ब्राइटन, इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, 2001।

क्रुक, रिचर्ड सी. और जैम्स मैनर, (संपा.) 1998, डेमोक्रैसी एंड डिसेंट्रलाइजेशन इन साउथ एशिया एंड वेस्ट अफ्रीका: पार्टिसिपेशन, एकाउंटीबिलिटी एंड परफॉर्मैंस, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

फर्निस, नॉर्मन, "द प्रैक्टिकल सिग्नीफिकैंस ऑफ डिसेंट्रलाइजेशन", इन *जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स*, खंड 36, संख्या (4), 1974, पृष्ठ 958-59।

हक, अहमद शफीकुल, "दि इल्युजन ऑफ डिसेंट्रलाइजेशनः लोकल एडमिनिस्ट्रेशन इन बांग्लादेश" *इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साइंसेज,* खंड 52, संख्या (1), 1986, पृष्ठ 79-95।

आइज़क, टी. एम. टॉमस और रिचर्ड डब्ल्यू. फ्रैंक, 2000, लोकल डेमोक्रेसी एंड डेवलपमेंट : पीपुल्स कैम्पेन फॉर डिसेंट्रिलाइज्ड प्लानिंग इन केरल, लेफ्टवर्ड, नई दिल्ली।

जैन, एल. सी. (संपा.), 2005, *डिसेंट्रलाइजेशन एण्ड लोकल गवर्नेन्स,* ओरिएंट लांगमैन, नई दिल्ली।

मुहम्मद, याहिया अख्तर, डिसेंट्रलाइजेशन फॉर डेवलपमेंट : एक्सपेरिमेंट्स इनं बांग्लादेश, फिलीपीन्स, *जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* खंड XXXIV, सं.1, जनवरी 1990, पृष्ठ 27।

रॉबिनसन, मार्क, 2005, "ए डिकेड ऑफ पंचायती राज रिफॉर्म्स : द चैलेंज ऑफ डेमोक्रैटिक डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडिया" एल. सी. जैन (संपा.), *डिसेंट्रलाइजेशन एण्ड लोकल गवर्नेन्स,* ओरिएंट लांगमैन, नई दिल्ली।

रोंदिनेली, डी.ए., 1981, गवर्नमेंट डिसेंट्रलाइजेशन इन कंप्रेहेंसिव पर्सपेक्टिव : थ्योरी एंड प्रैक्टिस इन डेवलपिंग कंट्रीज, *इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साइंसेज,* खंड 47, संख्या 2, पृष्ठ 122-145।

रोंदिनेली, डी.ए., इंप्लीमेंटिंग डिसेंट्रलाइजेशन प्रोग्राम्स इन एशिया : ए कंप्रेहेंसिव एनालिसिज, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एंड डेवलपमेंट, खंड 3, संख्या 3, 1983, पृष्ठ 181-208।

शिवरामकृष्ण, के.सी. (संपा.) 2006, पीपुल्स पार्टिसिपेशन इन अर्बन गवर्नेन्स, समाज विज्ञान संस्थान, कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

स्टीफन, एफ. और एन. राजशेखरन, 2001, शीप एंड लैंब्सः ऐन इम्पीरिकल स्टडी ऑफ विमिन, इन लोकल सेल्फ गवर्नेन्स इन कर्नाटक, बंगलौर, सर्च

विजयलक्ष्मी, वी., और बी. के., चन्द्रशेखर, 2000, जेंडर इनइक्विलिटी, डिफरेंसेज एण्ड आइडेंटिटीज : विमिन एंड लोकल गवर्नेन्स इन कर्नाटक, वर्किंग पेपर 72, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन संस्थान, बंगलौर।

विजयलक्ष्मी, वी., 2002, जेंडर एकाउंटैबिलिटी एंड पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेशन इन लोकल गवर्नमेंट, वर्किंग पेपर 102, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन संस्थान, बंगलौर।

वाधवानी, एम., और मिश्र, एस.एन. (संपा.) 1996, ड्रीम्स एण्ड रियलिटीज, एक्सपेक्टेशंस फ्रॉम पंचायती राज, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।

वेबस्टर नील, 1992, पंचायती राज इन वेस्ट बंगालः पार्टिसिपेशन फॉर द पीपुल और द पार्टी? *डेवलपमेंट एण्ड चेंज,* 23, संख्या 4,, पृष्ठ 129-63।

23.8 अभ्यास

1) प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण और वित्तीय अधिकारों के हस्तांतरण के संदर्भ में स्थानीय शासन पर सुधारों के प्रभाव की समीक्षा कीजिए।

2) स्थानीय शासन के बारे में लोगों की आकांक्षाओं की व्याख्या कीजिए।